₹50

ISSN: 2454-6874

देसहरियाणा

साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मंच

अंक 40-41, मई- अगस्त 2022

मौलाना मुहम्मद जाफ़र थानेसरी रचित

तवारीख़ अजीब या काला पानी

हिंदी रूपांतर

देसहरियाणा
ISSN : 2454-6874
साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मंच
अंक – 40-41, मई–अगस्त 2022

संपादक **सुभाष सैनी**

सह-संपादक अरुण कैहरबा

सम्पादन सहयोग जयपाल, कृष्ण कुमार, राजकुमार जांगड़ा, विकास साल्याण

सलाहकार प्रो. टी.आर. कुंडू, सुरेन्द्रपाल सिंह, परमानंद शास्त्री, अशोक भाटिया, सत्यवीर नाहड़िया

प्रबंधन कीर्ति सैनी, योगेश शर्मा, गुरदीप भोंसले

प्रकाशक सत्यशोधक फाउंडेशन, 912 सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र हरियाण

संपर्क सुभाष चंद्र - 94164-82156
विकास साल्याण - 90501-82156

Email haryanades@gmail.com

Website desharyana.in

सहयोग राशि एक प्रति मात्र 50 ₹
व्यक्तिगत: ₹300 (वार्षिक) संस्था: ₹500 (वार्षिक)
(पंजीकृत डाक खर्च समेत)
आजीवनः ₹5000 संरक्षकः ₹10000

ऑनलाईन भुगतान के लिए

Account Name	**Satyashodhak Foundation**
Bank Name	**Indian Bank, Sector -13**
Account No.	**50490177180**
IFSC:	**IDIB000K849**

प्रकाशित रचनाओं में प्रस्तुत विचार एवं दृष्टिकोण से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
सम्पादक एवं संचालन अव्यवसायिक एवं अवैतनिक, समस्त कानूनी विवादों का न्याय-क्षेत्र कुरुक्षेत्र न्यायालय होगा।
स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक सत्यशोधक फाउंडेशन, 912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र हरियाणा

इबकी बार

संपादकीय

पाँव जो राह-ए-हक़ में क़दम भर तो चला **6**

इफ्तेखार अहमद | जंग-ए-आजादी के रणनीतिकार मोहम्मद जाफर थानेसरी 8

विरासत

रमणीक मोहन - एस.ज़ेड.एच. नक़वी | कुछ बातें लिप्यन्तरण के बारे में 11

मुंशी मुहम्मद जाफ़र | थानेसरी तवारीख़ अजीब 13

- **भूमिका** **14**
- शुरू क़िस्सा जंग अम्बेला 16
- जासूस ग़ज़न ख़ान की जासूसी 16
- वारंट जारी होना और घर की तलाशी 18
- फ़रार होने का फ़ैसला 19
- अम्बाला से होते हुए दिल्ली पहुँचना और अलीगढ़ को जाना 19
- फ़्लैशबैक : अम्बाला पुलिस की कार्रवाई 20
- दिल्ली में कार्रवाई और अलीगढ़ में पकड़ा जाना 21
- पार्सन साहब के साथ दिल्ली को रवानगी, फिर अम्बाला में जेलबंद 22
- और पकड़-धकड़ तथा गिरफ़्तारियाँ 24
- मुक़द्दमे की पृष्ठभूमि के असल और सही हालात का बयान 25
- मुसलमानों-वहाबियों से अंग्रेज़ों का विद्वेष : हंटर की किताब का असर 26
- मजिस्ट्रेट ज़िला अम्बाला की कचहरी में मुक़द्दमे की काररवाई 27
- मुक़द्दमा सेशन कोर्ट में और हवालात के हालात 28
- फाँसी की सज़ा का फ़ैसला 32

जेलख़ाना, फाँसीघर और चीफ़ कोर्ट में मुक़द्दमा पेश होना	33
एक बुज़ुर्ग साथी की तथा माँ की मृत्यु	35
एक भविष्यवाणी और उस का सच साबित होना	36
जेल में श्रम के नाम के काम, भोजन और बीमारी ; अस्थाई शान और प्रतिष्ठा	38
इंद्रियों सम्बन्धी एक कमज़ोरी	40
झूठे गवाह बनने के लिए दिए गए लालच	41
अम्बाला जेल से लाहौर जेल भेजा जाना	42
जेल लाहौर के लिए रवाना होना	43
मुल्तान – और आगे कराची - को रवाना करने का बन्दोबस्त होना	45
बम्बई पहुँचना, बम्बई के नज़ारे और जेल	48
बम्बई से रवानगी	49
पोर्ट ब्लेयर अण्डमान पहुँचना	50
अण्डमान द्वीपसमूह : भौगोलिक अवस्था और पर्यावरण	52
इतिहास, मूल निवासी, उन के विश्वास और संस्कृति	54
आब-ओ-हवा और क़ानून	57
भेदभाव की मिसालें	58
रोज़गार, विवाह और समुद्री आफ़तों के कुछ अनुभव	59
मित्र की और बीवी की मृत्यु; फिर से विवाह के प्रयास	60
निकाह	62
फँसते-फँसते बचना	63
झूठे मुक़द्दमे और साज़िशें	64
लॉर्ड मेयो का क़त्ल	67
अंग्रेज़ी सीखना और उस के लाभ-हानि-असर	70
अंग्रेज़ों द्वारा वहाबियों का दमन	73
दमन का उल्टा असर	75
सन्तानें	75
डॉक्टर हंटर की किताब और मुहम्मद शफ़ी का सरकारी गवाह होने का क़िस्सा	76
हेड क्लर्की और रिहाई की कोशिशें और एक पुस्तक का प्रकाशन	79

अर्ज़ियाँ और दरख़्वास्तें और उन का हश्र 80
मौलवी अहमदुल्लाह साहब की मौत 81
बेटी की शादी बाबत बीवी का पत्र और रिहाई का आदेश 83
छोटी बीवी का आजीवन कारावास पूरा न होने की वजह से रिहाई का टलना 84
कुछ बातें पोर्ट ब्लेयर के क़ानून, क़ैदियों के साथ बरताव और लोगों के बारे में 85
औरत क़ैदियों, शादी और परिवार से सम्बद्ध नियम व हालात 87
अलग-अलग क़ौमों के लोगों का मेला-जमावड़ा 88
रिहाई के बाद अण्डमान छोड़ने से पहले दोस्तों को दी गई दावत और विदाई 90
लेखक की सम्पत्ति का बंटवारा 91
समुद्र का सफ़र 91
कलकत्ता पहुँचना और उस के बाद का सफ़र 92
अम्बाला पहुँचना 93
घर पहुँचना, थानेसर का हाल और लोगों द्वारा हार्दिक स्वागत 95
नौकरी और वकालत के काम के लिए दरख़्वास्तें और उन का हश्र 96
अंग्रेज़ सरकार के बारे में राय 98
प्रतिक्रिया **101**
अमरनाथ | महात्मा जोतिबा फुले के भाषणों की आधुनिकता 101

पाँव जो राह-ए-हक़ में क़दम भर तो चला

जो पाँव राह-ए-हक़ में क़दम भर चला न हो
वो दिल ख़राब ख़स्ता हो, वो आँख फूट जाए
होवे क़लम वो हाथ तो वो पाँव टूट जाए।

उपरोक्त शब्द मौलाना मोहम्मद जाफर थानेसरी की इस पुस्तक 'तवारीख-ए-अजीब' के आखिरी शब्द हैं, जिसका अनुवाद यहां प्रस्तुत किया गया है। जाफर थानेसरी वर्तमान हरियाणा राज्य थानेसर (वर्तमान कुरुक्षेत्र) के रहने वाले थे और लाड़वा के नंबरदार थे।

मौलाना मोहम्मद जाफर थानेसरी का जन्म सन् 1838 में थानेसर में हुआ था। पिता मिंया जीवन की बचपन में ही मृत्यु हो गई थी और उनका पालन-पोषण मां ने किया। उनको बेहतरीन शिक्षा दिलवाई। खुशहाल परिवार था और अपनी मेहनत से संपति अर्जित करके इज्जत का जीवन जी रहे थे। मौलाना जाफर थानेसरी 'बहावी आंदोलन' से जुड़े थे।

सन् 1865 में उनको फांसी की सजा हुई, लेकिन बाद में उसे उम्रकैद में बदल दिया गया। उनकी जायदाद कुर्क कर ली गई। उनको अंडमान जेल में भेज दिया। वहां वे बीस साल तक रहे। सन् 1883 में उनको अच्छे आचरण के कारण रिहा कर दिया गया। वापस आकर वे अंबाला में बस गए। अपने जीवन, मुकदमे, सजा, अंडमान जेल के बीस साल के विवरण साथ-साथ अंडमान निकोबार की बसासत और यात्रा का वर्णन किया। सन् 1866 से सन् 1883 तक अंडमान में रहे। कलकत्ता, इलाहाबाद, कानपुर, सहारनपुर होते हुए 21 नवंबर 1883 को अंबाला पहुंच गए। सन् 1905 में जाफर थानेसरी की मृत्यु हो गई।

मुंशी मुहम्मद जाफ़र थानेसरी द्वारा रचित 'कालापानी का इतिहास' पुस्तक सन् 1885 में टेम्पल प्रेस अंबाला से शेख मुहम्मदी की देख-रेख में प्रकाशित हुई। साधारण

पाठकों के लिए इसकी कीमत डाक खर्च समेत 8 आना थी। लेखक मुहम्मद जाफ़र थानेसरी ने पुस्तक का नाम रखा था 'तवारीख़ अजीब'। इसमें बीस साल की क़ैद तथा जंगलियों के इतिहास और अण्डमान द्वीपसमूह तथा वहाँ के क़ैदियों से सम्बन्धित नियमों पर आधारित अजीब और हैरान करने वाले हालात का विवरण है।

यह डायरी शैली में लिखा गया संस्मरण है। जाफर थानेसरी ने भूमिका में इसके संबंध में लिखा है कि "अब सम्मानित पाठकों की ख़िदमत में अर्ज़ है कि मैंने इस किताब को भी बतौर रोज़नामचा [दैनिकी, डायरी] रोज़मर्रा की ज़ुबान में लिखा है और दूसरे लोगों के कथनों और क़िस्सों को, जहाँ तक मुझे याद थे, ठीक उसी तरह नक़्ल किया है।"

यह एक ऐतिहासिक दस्तावेज है, जिससे तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक यथार्थ का तो पता चलता ही है उसके साथ तत्कालीन समाज की भाषा का नमूना भी मिलता है। लेखक ने अपने घर, रास्तों और सामाजिक संबंधों का विभिन्न घटनाओं के माध्यम से विश्वसनीय चित्र उकेरे हैं। जिससे तत्कालीन हरियाणा के शहरों विशेषतः थानेसर, पानीपत और अंबाला की स्थिति का प्रामाणिक परिचय मिलता है। अंडमान-निकोबार कैसे बना इसका पता चलता है।

देस हरियाणा पत्रिका के लिए हरियाणा संबंधी आवश्यक सामग्री की तलाश हमेशा ही रहती है। इंटरनेट पर अचानक जफ़र थानेसरी के नाम का जिक्र शहीदों में पाया तो जिज्ञासा हुई कि मामला क्या है। अंग्रेजी में इस पुस्तक का संक्षिप्त अनुवाद दिखाई दिया, लेकिन हिंदी में इसका कहीं कोई जिक्र नहीं था। उर्दू में पुस्तक मिली तो मैंने अपने विद्यार्थी उस्मान खान को इसका लिप्यांतरण करने को कहा उसने सहर्ष स्वीकार किया और अपने गांव खरींडवा के मौलवी की मदद से कर भी लिया। लेकिन उसकी वर्तनी तथा मूल पाठ में फारसी शब्दों के कारण इससे संतुष्टि नहीं हुई तो इसे दुरुस्त करने के लिये उर्दू के जानकार रमणीक मोहन से प्रार्थना की, उन्होंने नकवी साहब के साथ मिलकर इसका लिप्यांतरण व अनुवाद किया। इसी दौरान कोरोना की बीमारी भी आई। लेकिन सब दिक्कतों के बावजूद अनुवाद बेहद पठनीय और रोचक बना है। अनुवादकों ने पुस्तक की मूल भाषा को रखने की भरसक कोशिश की है। रमणीक मोहन, जेड.एच. नकवी, उस्मान खान व इस अनुवाद में सहयोगी सभी विद्वानों का देसहरियाणा टीम व पाठकों की ओर से आभार।

जाफर थानेसरी की आत्मकथा के साथ इस अंक में हरियाणा के वर्तमान परिदृश्य में किसान, धार्मिक असहिष्णुता, गैर बराबरी आदि की चुनौतियों को उजागर करती राजेंद्र रेढ़ू की एक हरियाणवी कविता शामिल की गई है। सुशांत सुप्रिय द्वारा

अनुदित सुप्रसिद्ध लेखक गार्सिया मार्खेज की कलाकार के सामाजिक-पारिवारिक व कला के दायित्वों और उनके बीच व्याप्त तनावों के साथ-साथ कलाकार की कला पर इनके प्रभावों को व्यक्त करती कहानी है। कला का मूल्य मुद्रा में आंकती उपभोक्तावादी सामाजिक संरचनाओं और कलात्मक मूल्यों के बीच के टकरावों को उदघाटित करती महत्वपूर्ण कहानी देसहरियाणा के पाठकों के लिये भेजने पर सुशांत सुप्रिय का धन्यवाद।सावित्रीबाई-जोतिबा फुले भाषण व पत्र विशेषांक पर वरिष्ठ आलोचक प्रो. अमरनाथ की प्रतिक्रिया देस हरियाणा टीम को उर्जा से भर रही है और जिम्मेदारी का एहसास भी करवा रही है।

आशा है अंक पसंद आएगा।

सुभाष सैनी
प्रोफेसर, हिंदी-विभाग,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय,
कुरुक्षेत्र

जंग-ए-आजादी के महान रणनीतिकार
मौलवी मोहम्मद जाफर थानेसरी

इफ्तेखार अहमद

मौलवी मोहम्मद जाफर थानेसरी महान स्वतंत्रता सैनानी थे। आजादी के परवाने मौलवी जाफर थानेसरी का जन्म 1837 में हुआ था। शुरुआत से उनके दिलों में आजादी की तड़प थी। बचपन की दहलीज पार करने के बाद मौलवी जाफर थानेसरी अपने कुछ साथियों के साथ दिल्ली आ गये और आजादी के आंदोलन में शामिल हो गए। उन दिनों दिल्ली उस आंदोलनकारियों का केंद्र हुआ करता था। यह वही समय था जब फिरंगियों ने कलकता से बदल कर अपनी राजधानी दिल्ली को बनाई। अब दिल्ली पर अंग्रेजों का पूर्णरूपेण कब्जा हो चुका था। स्वतंत्रता सेनानियों को गिरफ्तार किया जाने लगा।

अब मौलवी को लगा वे दिल्ली में सुरक्षित नहीं हैं। मौलवी मुहम्मद जाफर थानेसरी भाग कर थानेसर, जिसे अब कुरुक्षेत्र के नाम से जाना जाता है। जाफर साहब ने सरहदी प्रांत के स्वतंत्रता सेनानियों से संपर्क स्थापित किया तथा उन्हें राइफलें, सामान और नकदी भिजवाने का काम पूरा किया। गजन खां नामक गद्दार ने डिप्टी करनाल के कमिशनर को इसकी सूचना दे दी। इसी दौरान मुहम्मद जाफर के मित्र ने अपने नौकर को करनाल भेजा। नौकर थानेसर रात को पहुंचा और सोचा कि अहले सुबह मौलवी को इसकी सूचना देंगे। सुबह होने से पहले अंग्रेज कप्तान पासंज तलाशी का वारंट ले कर मौलवी साहब के घर पहुंच गया। सोने से पहले मौलवी मुहम्मद जफर संस्कृत भाषा में मुहम्मद शफी ठेकेदार अम्बाला को एक पत्र लिख चुके थे, जिसमें स्वतंत्रता सेनानियों को रुपया भेजने की बात लिखी थी। वह पत्र उनके कमरे में मिला परन्तु स्वयं वे फिरंगियों को चकमा देने में कामयाब हो गए। 12 दिसंबर 1863 पपली, अम्बाला, पानीपत होते हुए जफर दिल्ली पहुंचे और फिर वहां से अलीगढ़ चले गए।

कप्तान पासंज ने उनके भाई मुहम्मद सईद को मारपीट कर उनका पता मालूम कर लिया और फिर मौलवी थानेसरी को अलीगढ़ से गिरफ्तार कर लिया गया। गिरफ्तारी के साथ ही यातनाओ का दौर शुरू हुआ। मौलवी साहब को एक छोटे से अंधेरे कमरे में रखा गया। खाने में दो रोटियां जिसमें आटा के साथ रेत भी मिला होता था और साग के उबले डंठल मिलता था। पांव में बेड़ियां और गले में लोहे की हंसली पहना दिया गया था। पहनने के लिए पजामा इतना छोटा होता था कि घुटने मुश्किल से ढंके होते थे। मौलाना को नमाज पढ़ने में भी बहुत मुश्किल होती थी। दूसरे स्वतंत्रता सेनानियों की कारगुजारियों को जानने के लिए मौलवी साहब को बहुत निर्दयता के साथ मारा जाता था और कभी पूरी रात मार खाते गुजर जाती थी।

मौलवी साहब पर मुकदमा शुरू हुआ। मुकदमा एडवर्ड हावर्ड की अदालत में लगी थी। 2 मई 1864 को जायदाद की कुर्की और फांसी की सजा सुनाई गई। पुनः एडिशनल कमिश्नर की अदालत में अपील हुई जिसमें उनकी फांसी की सजा उम्रकैद में बदल दी गयी। इस अपील का फैसला 16 सितम्बर 1864 को सुनाया गया।

मौलवी मुहम्मद जाफर थानेसरी ने अपनी किताब ''काला पानी'' में लिखा है, ''जिस दिन फांसी की सजा का आदेश सुनाया जाने वाला था, एडवर्ड हावर्ड ने मुझे संबोधित करते हुए कहा कि तुम बहुत बुद्धिमान, शिक्षित, कानून जानने वाले और नगर के नंबरदार, रईश हो, परन्तु तुमने अपनी सारी बुद्धिमानी और कानूनदानी को सरकार के विरोध में खर्च किया। अब तुम्हें फांसी दी जाएगी, जायदाद जब्त होगी, तुम्हारी लाश भी तुम्हारे घरवालों को नहीं मिलेगी और तुम्हें फांसी पर लटका देख मुझे बहुत प्रसन्नता होगी। मौलवी साहब ने जवाब दिया, ''जान देना और लेना भगवान का काम है, आपके बस में नहीं वह प्रभु सब कुछ जाननेवाला है। कहीं मेरे मरने से पहले आपको ही न मार दे।'' इस उत्तर से वह बहुत क्रोधित हुआ मगर फांसी देने से अधिक वह मेरा किया कर सकता था।''

कुछ स्वतंत्रता सेनानी, जैसे-काजी मियां जान कैद में ही मर गए। कैद में स्वतंत्रता सेनानियों से कठिन से कठिन काम लिया जाता था। मौलाना याहिया अली रहट खीचते थे। मौलवी जफर को कागज काटने का काम दिया गया। मौलवी मुहम्मद जफर को अंबाला जेल से 11 जनवरी 1866 को पोर्ट ब्लेयर ले जाया गया। मौलवी 20 वर्ष बाद 9 नवम्बर 1883 को स्वदेश वापसी वापस आए। कुछ दिनों तक पुलिस की निगरानी में रहे। फरवरी 1888 की निगरानी समाप्त हुई।

मौलवी जाफर थानेसरी जहां भी जाते हिन्दू मुसलमान सब आदर करते। सत्य किसी को ज्ञात नहीं है। संभवतः थानेसरी, 1905 इस दुनिया को छोड़ कर सदा के लिए खुदा को प्यारे हो गए। ऐसे महान योद्धा को सादर प्रणाम।

साभार , जनलेख.कॉम

कुछ बातें लिप्यन्तरण के बारे में

रमणीक मोहन - एस.ज़ेड.एच. नक़वी

इस ऐतिहासिक दस्तावेज़ का लिप्यन्तरण करना ख़ास तौर से इस लिए चुनौतीपूर्ण था कि इस काम में उर्दू के अलावा अरबी और फ़ारसी के भी कुछ अंशों का लिप्यन्तरण (और अनुवाद) करना शामिल था। इसलिए सर्वप्रथम हम अपने तीन सहयोगियों का शुक्रिया अदा करना चाहेंगे जिन की मदद से यह सम्भव हो पाया।

अरबी भाषा के शब्दों और आयात-ए-क़ुरानी का अनुवाद शहर अमरोहा के उस्ताद मिर्ज़ा साजिद साहिब और मौलाना शकील अहमद ने तथा फ़ारसी की कहावतों, अश्आर और शब्दों का अनुवाद अमरोहा के ही मौलाना अफ़रोज़ मुज्तबा नक़वी साहिब ने किया है। इस दस्तावेज़ के इन अंशों का लिप्यन्तरण भी इन साहिबान की मदद से हो पाया है। हम इन तीनों के तहेदिल से शुक्रगुज़ार हैं क्योंकि इस मदद के बिना हमारा काम अधूरा रह जाता।

इस दस्तावेज़ की मूल उर्दू की कुछ विशेषताओं को देखते हुए लिप्यन्तरण के साथ-साथ आंशिक अनुवाद और सम्पादन करने की भी ज़रूरत महसूस हुई। उर्दू इसी मुल्क की ज़ुबान है लेकिन संस्कृतनिष्ठ हिन्दी की तरह अरबी-फ़ारसी के प्रभाव में लिखी गई उर्दू को समझने में दिक़्क़त आने की सम्भावना बनी ही रहती है, ख़ास तौर से इस लिए भी कि उर्दू के साथ लोगों का प्यार और लगाव बना रहने के बावजूद कई ऐतिहासिक-राजनीतिक कारणों से इस भाषा का इस्तेमाल एक लम्बे समय से घटता चला आया है। इस दिक़्क़त

को और पाठकों की सहूलियत को ध्यान में रख कर हम ने मूल दस्तावेज़ की भावना को बनाए रखने की कोशिश के साथ ही जगह-जगह पर अनुवाद और सम्पादन भी किया है। ऐसा करते हुए

जिन मूल वाक्यांशों में अत्यधिक कठिन उर्दू का इस्तेमाल था, उन का कमोबेश सरल हिन्दुस्तानी (आम तौर पर समझ में आने वाली हिन्दी-उर्दू की मिली-जुली भाषा) में अनुवाद किया गया है;

कुछ कठिन उर्दू के शब्दों का अर्थ दस्तावेज़ की मूल विषयवस्तु में ही वर्गाकार कोष्ठकों {स्क्वेअर् ब्रैकिट्स – [ ] } में दिया गया है – ऐसा करते हुए ध्यान रखने की कोशिश रही है कि पठन का प्रवाह बना रहे ;

कुछ ऐसे शब्दों या वाक्यांशों या सन्दर्भों के लिए, जिन की व्याख्या की ज़रूरत महसूस हुई, उसी पृष्ठ के अन्त में पाद-टिप्पणियाँ (फ़ुट्नोट्स) दी गई हैं ;

दस्तावेज़ के पाठ को रोचक और सरल बनाने के मद्देनज़र मूल उर्दू दस्तावेज़ में कई जगह आए बहुत ही लम्बे-लम्बे अनुच्छेदों (पैराग्राफ़्स) को दो (या इस से भी अधिक) अनुच्छेदों में विभक्त किया गया है;

मूल दस्तावेज़ में उप-शीर्षक भी थे – कुछ जगह इन उप-शीर्षकों को सहूलियत के मुताबिक़ बदला गया है;

हम ने अपनी तरफ़ से पूरी कोशिश की है कि मूल पाठ की भावना को बनाए रखते हुए शब्दों के सटीक अर्थ के साथ विषयवस्तु का सही अनुवाद पाठक तक पहुँचे – इसी प्रक्रिया में कुछ जगह कुछ हद तक स्वतंत्र अनुवाद भी हुआ है ताकि मूल विषयवस्तु का सही अर्थ और आशय आप तक पहुँच पाए।

जहाँ-जहाँ भी हमें कुछ समझ पाने में दिक़्क़त महसूस हुई, विभिन्न स्रोतों के ज़रिए उन मुश्किलों को दूर करने के भरसक प्रयास किए गए। इन प्रयासों के बावजूद कोई कमी रह गई हो तो उसे दरकिनार करेंगे, यह उम्मीद हम आप से रखते हैं। दस्तावेज़ आख़िरकार आप सब के बीच है, प्रतिक्रियाओं का इन्तज़ार रहेगा।

तवारीख़ अजीब

मूल उर्दू लेखक :
मुंशी मुहम्मद जाफ़र थानेसरी

स्वतन्त्र लिप्यन्तरण एवं आंशिक अनुवाद :
रमणीक मोहन तथा एस.ज़ेड. एच. नक़वी

भूमिका

नहमदहु व नस्तईनाहु व नुसल्ली अल्लाह रसूल-ए-हिल करीम – क़ाललल्लहो तआला आहसेबन नासा अईं मुतरकू अ यक़ूलू आमन्ना बलकद लायुफ़्तनून। वलक़द फ़तन्नल लज़ीना मिनक़बल-ए-हिम फ़लाया अलमनल्लाह लज़ीना सदक़ू व लया लमन्नल काज़िबीन

अनुवाद : क्या गुमान है लोगों को कि हम फ़क़त [केवल] उन के मुँह से कहने पर कि हम मुसलमान हो गए, उन को छोड़ देवेंगे और उन के ईमान का इम्तिहान न करेंगे और तहक़ीक़ पहले उम्मतों के लोगों को [जाँच-पड़ताल से पहले विशेष अवतारों या पैग़म्बरों को मानने वाले लोगों को] हम ने ख़ूब इम्तिहान कर के देख लिया है, पस अब [उस के बाद अब] अल्लाह मुसलमानों को भी इम्तिहान कर के ज़ाहिर कर देवेगा कि कौन सच्चे मुसलमान हैं और कौन झूठे हैं।

अण्डमान से मेरी वापसी के बाद जब हर एक दोस्त ने, जिस से मेरी मुलाक़ात हुई, मेरी क़ैद और सफ़र और उन जज़ाइर [टापुओं] की हालत पूछनी शुरू की तो हर एक शख़्स के रूबरू [समक्ष] 20 साल के इतिहास का बयान करना दुश्वार [कठिन] समझ कर, इस मुद्दत में मुझ पर जो कुछ बीता, उन में से कुछ ज़रूरी-ज़रूरी घटनाएँ उन टापुओं के हाल समेत पाठकों के लिए संक्षिप्त में लिख देता हूँ ताकि हर साइल [दरख़्वास्त करने वाले] और मुस्तफ़िसर [पूछने वाले] के रू-ब-रू उस को पेश कर दूँ।

जब अप्रैल 1879 ईस्वी के मुताबिक़ 1296 हिजरी में मैंने तवारीख़ पोर्ट ब्लेयर मुसम्मा बह् [नामक] *तारीख़ अजीब* लिखी थी, उस के कुछ दिनों पहले मेरी दरख़्वास्त रिहाई बड़े जोश ख़रोश से हज़ूर नवाब गवर्नर जनरल बहादुर से नामंज़ूर हो गई थी जिस से अक्सर हुक्काम [अधिकारी वर्ग] बल्कि ख़ास व आम को यक़ीन हो गया था कि मेरी रिहाई कभी न होगी। लेकिन मैं रहमत-ए-इलाही [अल्लाह की कृपा] से नाउम्मीद न हुआ था,

चुनांचे ज़िक्र की गई किताब के दीबाचा [प्रस्तावना] में इबारत लिखी थी कि "दुनिया बाउम्मीद क़ायम है। देखिए पर्दा-ए-ग़ैब [परोक्ष परलोक] से अब और क्या ज़ाहिर होता है।" बल्कि प्रस्तावना के आख़िर में ज़िक्र की गई किताब के पाठकों से यही इल्तजा की थी कि वह मेरे हक़ में दुआ करें कि इंसाफ़ का चोला पहने हमारी सरकार ख़ाकसार को इन नंग धड़ंग जंगलियों की सोहबत से जुदा करे ताकि हिन्द में हाज़िर हो कर यह किताब छपवा कर अपने मुल्क की बोली के पाठकों को नज़्र [भेंट] करूँ। तो इस हमदर्द की लिखी बात को अभी थोड़े दिन न हुए थे कि ख़ुद-ब-ख़ुद बिना मेरी दरख़्वास्त के अल्लाह की मदद से लॉर्ड रिपन साहब बहादुर की ज़ुबान से मेरी रिहाई का आदेश हो गया।

मेरी पहली किताब *तारीख़-ए-अजीब* का नाम भी तारीख़ी [ऐतिहासिक] है और ख़ूबसूरत संयोग से सिर्फ़ एक हर्फ़ [शब्द] के बदलाव से इस छ: बरस (1296) की कमीबेशी को पूरा कर के इस का भी तारीख़ी नाम *तवारीख़-ए-अजीब 1302* रखा गया। गोया यह वही किताब है जिसे हिन्द में पहुँचने के बाद छपवाने का वादा था।

अब सम्मानित पाठकों की ख़िदमत में अर्ज़ है कि मैंने इस किताब को भी बतौर रोज़नामचा [दैनिकी, डायरी] रोज़मर्रा की ज़ुबान में लिखा है और दूसरे लोगों के कथनों और क़िस्सों को, जहाँ तक मुझे याद थे, ठीक उसी तरह नक़्ल किया है। मगर इन्सान होने के नाते इस में जहाँ कहीं भी मुझ से कमीबेशी हुई हो, उसे ख़ुदा मुआफ़ करे और आलोचकों और विद्वानों से उम्मीद है कि जहाँ कहीं ग़लती पावें, मुआफ़ करने वाले क़लम से सुधार कर लेवें और मेरे हक़ में दुआ करें कि जैसे बड़ी घातक हालत से मुझे निजात बख़्शी, ऐसे ही वह मेहरबान रब मेरे दिल की इच्छाओं को पूरा करने के बाद उसी तरह मुझे इस दुनिया से भी आज़ाद करे जैसे उस ने मुझे क़ैद की घातक हालत से आज़ाद किया है – वमा तोफ़ीकी इल्ला बिल्लाहे व अलेहे तवक्कलतो व इलेहे उनीब [और मुझ में कुछ भी क़ाबिलियत नहीं है सिवा उस के जो अल्लाह के ज़रिए से मिली है; उसी पर मैं निर्भर हूँ और उसी से उम्मीद करता हूँ]।

शुरू क़िस्सा जंग अम्बेला

आख़िर सन 1863 ईसवी मुताबिक़ 1280 हिजरी, भारत और अफ़ग़ानिस्तान के ग़ज़नी के नज़दीक सीमा पर ख़ुद सरकार की ज़बरदस्ती से एक बड़ी जंग शुरू हो गई। जनरल चंबरलेन साहब इस जंग [युद्ध] के सिपहसालार [सेनापति] थे। [अफ़ग़ानिस्तान के साथ लगती सरहद पर वर्तमान पाकिस्तान के सूबा ख़ैबर पख़्तूनख़्वा के गाँव] अम्बेला की घाटी में जा कर फ़ौज सरकार को बहुत तकलीफ़ हुई। सरकार के अनुचित हस्तक्षेप की वजह से अख़ुन्द सवात[1] भी क़ाफ़िले के लोगों की मदद के मक़सद से अपने बहुत से मुरीदों [चेलों, अनुयायियों] के साथ युद्ध में शामिल हो गया। मुल्की अफ़ग़ान चारों तरफ़ से अपने बचाव के वास्ते मुक़ाबिल सरकार पर टूट पड़े। घमासान युद्ध छिड़ गया। ख़ुद जनरल चम्बरलेन साहब सख़्त ज़ख़्मी हुए। क़रीब 7000 की मौत की नौबत पहुँची। तमाम पंजाब की छावनियों से फ़ौज खींच कर सरहद पर भेजी गई।

जासूस ग़ज़न ख़ान की जासूसी

उधर यह गरमागरमी थी, इधर हिन्द के वाइसराय लार्ड एलजिन साहब अपनी इस हरकत और ज़बरदस्ती छेड़छाड़ पर शर्मिंदा हो कर चम्बे की पहाड़ी पर अचानक मर गए। हिंदुस्तान बेगवर्नर हो गई। ऐसे नाज़ुक वक़्त और गहमागहमी के समय में 11 दिसम्बर 1863, मुताबिक़ 28 माह-ए-जमादी-उल-सानी [चांद के मुताबिक़ कैलेण्डर में छठे महीने का नाम] सन 1280 हिजरी को एक सवार पुलिस, नियुक्त चौकी पानीपत ज़िला करनाल, मुसम्मा[2] ग़ज़न ख़ान नाम एक विलायती अफ़ग़ान ने किसी ज़रिए से मेरे हाल से वाक़िफ़ हो कर और ऐसे वक़्त में अपनी दीनवी [धार्मिक] भलाई का मौक़ा जान कर, एक बड़ी लम्बी-चौड़ी कैफ़ीयत ख़ैरख़्वाहाना [शुभेच्छापूर्ण हालत] के साथ, जिस का सारा बयान

[1] वर्तमान पाकिस्तान के सूबा ख़ैबर पख़्तूनख़्वा के ज़िला सवात इलाक़े का उस्ताद।

[2] मुसम्मा – पुरुषों के नाम से पहले लगाया जाने वाला शब्द जो विशेषत: सरकारी काग़ज़ों में लगाया जाता है।

ख़ैरख़्वाहाना सिवाय इस बात के कि किसी ज़राए [साधन] से उस को मेरे हाल की ख़बर हो गयी थी, महज़ दरोग़ [केवल झूठ] है - [उस ने] बहज़ूर साहब डिप्टी कमिश्नर करनाल के हाज़िर हो कर ये मुख़्बिरी [जासूसी] की "कि यह जंग जो हिंदुस्तानी क़ाफ़िले वालों की साथ सरहद पर हो रहा है, उन लोगों को फ़लाँ शख़्स नम्बरदार थानेसर रुपए और आदमियों से मदद देता है। मैंने इस क़ाफ़िले के कुछ लोग राहगीर गिरफ़्तार कर के, सज़ा के लिए अदालत में पेश किए थे मगर नियमानुकूल सबूतों के अभाव में वे छोड़ दिए [गए] थे। और मेरे बयान को अदालत ने झूठ समझा था। उन्हीं राहगीरों से उस वक़्त मुझे थानेसर के इस नम्बरदार का हाल भी मालूम हुआ था। फिर मज़ीद एहतियात [अतिरिक्त सावधानी] और साबित कराने अपने बयान के, मैंने याग़िस्तान[3] से अपने एक इकलौते बेटे फ़िरोज़ को ख़त लिख कर पानीपत बुलवाया। जब वह आया तो उस को सब ज़ेर व ज़बर [उथल-पुथल] समझा कर लश्कर क़ाफ़िला को रवाना किया। यह ऐसा नाज़ुक वक़्त था कि इधर सरकार अंग्रेज़ी सरहद पर जंग की तैयारियाँ कर रही थी और उधर लोग अपनी तैयारियाँ कर रहे थे। अगर मेरा बेटा सरकार अंग्रेज़ी के हाथ पड़ता तो वो दुश्मन समझ कर उस को फाँसी दे देते और अगर दुश्मनों को मेरे बेटे की नीयत का हाल मालूम हो जाता तो वह सरकार का जासूस समझ कर उस को गर्दन मारते। लेकिन मैंने सिर्फ़ सरकार के प्रति वफ़ादारी और अपने को सच्चा साबित करने के वास्ते ऐसे ख़तरे, गोया मौत के मुँह में अपने बेटे को झोंक दिया। ख़ैर, जब मेरा बेटा दुश्मनों की फ़ौज में पहुँचा तो मुद्दत तक अपने को उन का शरीक ज़ाहिर कर के उन के साथ रहा। और जब उन से ख़ूब हिल-मिल कर दूध-शक्कर हो गया तो वहाँ भी यही मालूम हुआ कि थानेसर का नम्बरदार इस लश्कर के लिए रुपया और रंगरूट भेजता है। जब मेरे बेटे को यह मतलब की बात मालूम हो गई तो वह वहाँ से भाग कर हज़ारों तकलीफ़ों और कठिनाइयों को झेलता हुआ 9 माह बाद मेरे पास पानीपत पहुँचा।"

अफ़सोस है कि वफ़ादारी की इस बनावटी दास्तान को सब अंग्रेज़ों ने सही तसव्वुर [कल्पित] कर लिया और डॉ. हंटर ने तो इस मुक़ाम पर उस को प्राचीन रोम के वफ़ादारों से भी बेहतर लिख कर वो तारीफ़ की है जो किसी तरह भी मुनासिब नहीं है। ख़ैर, डिप्टी कमिश्नर करनाल ने ये दास्तान सुन कर तार के ज़रिये ज़िला अम्बाला को ख़बर भेज दी, जिस की सीमा में हमारा शहर स्थित है। इधर मुख़्बिर [जासूस] मुख़्बिरी [जासूसी]कर के बाहर निकला था कि उधर हमारे एक दोस्त डिप्टी कमिश्नर साहब करनाल से मुलाक़ात करने उन के बंगले पर पहुँचे, जिन से चर्चा के दौरान उक्त साहब ने उस मुख़्बिरी का भी

[3] याग़िस्तान – बरतानवी भारत और अफ़ग़ानिस्तान के बीच का एक पश्तून इलाक़ा।

ज़िक्र किया। जब बाद मुलाक़ात यह साहब अपने डेरे को तशरीफ़ लाए तो उन्होंने कादा नाम के एक अपने नौकर से, जो मेरा पड़ोसी था, बतौर अफ़सोस उस जासूसी का बयान किया जिस का ऊपर ज़िक्र किया है। यह सुन कर वह उसी वक़्त उस की ख़बर करने थानेसर के लिए दौड़ पड़ा। लेकिन ख़ूबी-ए-तक़दीर [सौभाग्य] से यह शख़्स कुछ ज़्यादा रात गए थानेसर में पहुँचा और सब से पहले मेरे मकान पर आया। मगर मैं उस वक़्त घर के अन्दर सो रहा था। उस वक़्त रात को हमारा दरवाज़ा बन्द और हमें सोते देख कर ऐसे आराम के वक़्त में हमें तकलीफ़ देना मुनासिब न जान कर उस ने अपने दिल में सोचा कि सुबह ख़बर कर दूँगा।

वारंट जारी होना और घर की तलाशी

इधर तक़दीर उस को तो दरवाज़े पर से हटा ले गई, अब उधर अम्बाला की हालत सुनिए। जब अम्बाला में ये ख़बर पहुँची, एक वारंट मेरे घर की तलाशी का जारी हुआ और कप्तान पार्सन साहब डिस्ट्रिक्ट सुपरिंडेंट पुलिस बहुत सी पुलिस के साथ रातों रात मेरे मकान पर पहुँचे। यहाँ अल्लाह की माया का तमाशा देखिये। एक ही वक़्त में दो आदमी, एक करनाल से मुझे ख़बर देने को और दूसरा अम्बाला से मेरे घर की तलाशी को रवाना हुए। करनाल वाला जो मेरा ख़ैरख़्वाह था, पहले पहुँचा और कुछ न कर सका मगर ये दूसरे साहब रात के 2 बजे मेरे घर पहुँच गए। पहले चारों तरफ़ से मेरे मकान को घेर लिया और फिर मुझे बाहर बुलाया। मैंने बाहर जा कर देखा के सुप्रिंडेंट पुलिस घर की तलाशी के वारंट समेत मेरे दरवाज़े पर मौजूद हैं। उन्होंने पहले मुझ को वारंट दिखलाया, फिर कहा कि आप अपनी तलाशी दो। उस वक़्त मैं समझा कि दाल में कुछ काला है। तब मैंने चाहा कि पहले मेरे घर के अन्दर की तलाशी होए तो बेहतर है ताकि बैठक में जो बला का भरा हुआ ख़त रखा है, किसी तरह पुलिस के हाथ न आवे लेकिन होनी को कौन रोक सकता है। हालाँकि मुख्य दरवाज़े के अन्दर दाख़िल हो कर मेरी दहलीज़ में सरासर अंधेरा था और उसी दहलीज़ के उत्तर की ओर बैठक थी, उस का दरवाज़ा उस अंधेरे में बिल्कुल न मालूम होता था, तो भी सुप्रिंडेंट साहब इसी बात पर ज़ोर देते रहे कि पहले बैठक की ही तलाशी की जावे।

उस वक़्त बैठक में जाने के लिए दो दरवाज़ों का खुलवाना ज़रूर हुआ जो अन्दर से बन्द थे। मैंने चालाकी से मुंशी अब्दुल ग़फ़ूर का नाम (जो उस में चंद आदमियों समेत और सोते थे) पुकार कर ऊंची आवाज में कहा कि सुप्रिंडेंट साहब तलाशी के लिए खड़े हैं, तुम जल्दी दरवाज़ा खोल दो और ऐसा कहने का कारण था कि किसी तरह वो लोग तलाशी की बात समझ कर दरवाज़ा खोलने से पहले उस ज़हरीले ख़त को फाड़ दें। मेरी इस पुकार को समझ कर सुपरिंडेंट साहब मुझे रोकते भी रहे, मगर मैं कहाँ सुनता था। लेकिन तक़दीर

फाड़ने देवे तो फाड़ा जावे। उन अन्दर वालों ने घबराहट में मेरे हंगामे और इशारों को कुछ भी नहीं समझा और दरवाज़ा खोल दिया। अब बैठक में तलाशी होने लगी और वही ख़त जिस का डर था, सब से पहले पुलिस के हाथ में आया और उसी शाम को उस की गिरफ़्तारी से सिर्फ़ 6 घंटे पहले तक़दीर ने वह ख़त मेरे हाथ से लिखवा रखा था। वह ख़त क़ाफ़िले के नाम था और उस में कुछ हज़ार अशरफ़ियों की रवानगी का ज़िक्र था। उस के सिवा पटना से आए और मुहम्मद शफ़ी अम्बालवी के भेजे हुए कुछ पुराने ख़त पुलिस के हाथ लग गए। हालाँकि उन ख़तों में कोई ऐसा नुक़्सानदेह मामला न था मगर पुलिस को ये पता मिल गया कि मुहम्मद शफ़ी अम्बालवी और पटना के लोगों की तलाशी और तफ़्तीश [जाँच-पड़ताल] भी ज़रूर करनी चाहिए। मुंशी अब्दुल ग़फ़ूर, मेरे एक क्लर्क और अब्बास नामक बंगाली लड़के को भी मेरे घर से पकड़ कर ले गए। गो मेरी निस्बत भी पुलिस को शक पक्का हो गया था लेकिन गिरफ़्तारी के वारंट न होने और सरकार की मंज़ूरी हासिल न होने पर, जो ऐसे मुक़द्दमों में ज़रूरी है, मुझ से उस दम कुछ फ़राहम [इकट्ठा] न हुए।

फ़रार होने का फ़ैसला

जब पुलिस मेरे घर से चली गयी तो यह बात सोचने लायक़ ठहरी कि इस वक़्त मुझे क्या करना चाहिए। उस गवाही और सबूत को ध्यान में रखते हुए जो उन को मेरे घर से मिल गयी थी और मेरी सज़ा के वास्ते ऊपरी तौर पर देखने में काफ़ी थी, मैंने फ़रार हो जाना मुनासिब जाना। हालाँकि मैं पुलिस की हिरासत में न था मगर वो मेरी तरफ़ नज़र गड़ाए हुए थे और मेरी हरकतों को ताक रहे थे। मैंने अपनी वालिदा साजिदा [सदाचारी, बुज़ुर्ग माँ] से, जो उस वक़्त ज़िन्दा मौजूद थीं, और अपनी बीवी से सलाह ले कर और उन को अपने फ़रार होने पर राज़ी पा कर यह दांव खेला कि मैं अपने शहर से रवाना हो कर पहले पिपली में आया, जहाँ तहसील और थाना वग़ैरा है, और वहाँ तहसील के मुलाज़िमों और पुलिस से भी राय ली कि अब मुझे क्या करना चाहिए। सब ने एकमत राय दी के तुम अम्बाला जाओ और वहाँ पूछताछ करो कि यह क्या मुक़द्दमा है और किस ने यह मुख़्बिरी की है।

अम्बाला से होते हुए दिल्ली पहुँचना और अलीगढ़ को जाना

मतलब कि यह सलाह और मश्वरा उन सब से ज़ाहिर कर के, मैं शाम के वक़्त पीपली से अम्बाला की राह पर रवाना हुआ। उस वक़्त बहुत से आदमी प्यार भरी आँखों और अफ़सोस से मेरी तरफ़ देख रहे थे। जब मैं एक घोड़ी पर सवार हो कर चला, हर किसी को यह यक़ीन हो गया कि मैं अम्बाला जा रहा हूँ। जब तक दिन की रोशनी थी, मैं बराबर सड़क-ओ-सड़क अम्बाला को चलता गया। कोई एक मील भर रास्ता चलने के बाद गहरा

अंधेरा हो गया और मुसाफ़िर भी दूर-दूर तक नज़र न आते थे। उस वक़्त मैं अम्बाला की सड़क छोड़ कर जंगल के रास्ते से थानेसर के नज़दीक अपनी ज़मींदारी की ज़मीन में एक तय जगह पर रात के क़रीब 8:00 बजे पहुँच गया। जब मैं वहाँ पहुँचा, मैंने देखा कि मेरी माँ और बीवी-बच्चे और मेरा भाई मुहम्मद सईद वग़ैरा मुझ से आख़िरी मुलाक़ात के लिए वहाँ हाज़िर हैं। ख़ैर, मैं उन से मिल कर और अपनी बीवी और बच्चों को साथ ले कर एक बढ़िया छतरीदार बैलगाड़ी की सवारी से सुबह होते ही 32 कोस पानीपत पहुँचा। मैं पानीपत शहर के अन्दर नहीं गया। सड़क से अपनी बीवी-बच्चों को विदा कर के वहाँ से एक घोड़े की सवारी से दूसरे दिन 40 कोस देहली में पहुँचा और वहाँ मियाँ बसीरूद्दीन सौदागर की कोठी में ठहरा। वहाँ जा कर मियाँ हुसैनी निवासी थानेसर और हुसैनी निवासी पटना और अब्दुल्ला नाम के एक बंगाली से मेरी मुलाक़ात हुई। ये दोनों आदमी आख़िर-उल-ज़िक्र पटना से कुछ अशरफ़ियाँ ले कर आये थे। मैंने वो अशरफ़ियाँ उन से ले कर हुसैनी निवासी थानेसर के हवाले कर के उस को हिदायत कर दी कि जैसे मुमकिन हो इस माल को क़ाफ़िले को पहुँचा दो।

हुसैनी थानेसरी को रवाना करने के बाद मैं उन दो धन लाने वालों को अपने साथ पूरब को वापिस ले जाना चाहा। इस वक़्त तक मेरे दिल में ये ख़याल था कि उस दाव की वजह से इस तरफ़ मेरी तलाश करने कोई न आवेगा। मेरी तलाश अम्बाला और उस के पश्चिम में होगी। इस ख़याली अक़्लमंदी से देहली पहुँच कर मैंने अपने को छिपा हुआ रखने की कोई ऐहतियात न की। मैं ख़ुद अपने मामूली लिबास में एक घोड़ागाड़ी किराये पर करने को चांदनी चौक तक गया। और फिर 15 दिसम्बर को हम तीनों आदमी गाड़ी में सवार हो कर अलीगढ़ कोयल को रवाना हो गए। राह में गाड़ी हाँकने वालों को बहुत सा इनाम-इकराम दे कर चाहा कि किसी तरह जल्दी कोयल पहुँच कर रेल पर सवार हो जाऊँ क्योंकि उस वक़्त तक कोयल से इस तरफ़ रेल न आई थी। मगर तक़दीर कहाँ जल्दी पहुँचने देती है। कई चौकियों पर घोड़ा न मिलने से गाड़ी खड़ी रह गई। मजबूरी में उस गाड़ी को राह में छोड़ कर एक दूसरी गाड़ी बदली। मगर इस के बावजूद राह में एक दिन ज़्यादा लग गया। हालाँकि देर हो गई थी मगर मुझे उस वक़्त तक यह ख़याल था कि मैं ऐसी चाल से आया हूँ कि शायद मुद्दत तक मेरी तलाश में कोई इस तरफ़ नहीं आयेगा। अब मुझे यहीं छोड़ कर अम्बाला पुलिस की कार्रवाई को सुनिए।

"फ़्लैशबैक" : अम्बाला पुलिस की कार्रवाई

12वीं दिसंबर को जब सुप्रिडेंट पुलिस मेरे ख़तों और आदमियों को, जो मेरे घर से मिले थे, अम्बाला ले गए तो उन को देखने की सरकारी मंज़ूरी मिलने के बाद मेरी गिरफ़्तारी का

वारंट जारी हुआ। वहीं पार्सन साहब दूसरे दिन मेरी गिरफ़्तारी का वारंट ले कर थानेसर आया और मुझे वहाँ न पा कर शहर में आफ़त मचा दी। सैंकड़ों घरों की तलाशी हुई, पचासों मर्द-औरत पकड़े गए। मेरी बूढ़ी माँ और मेरे भाई मुहम्मद सईद को, जो उस वक़्त सिर्फ़ 12-13 बरस का था, और उस की बीवी को क़ैद कर के उन पर सख़्त तकलीफ़ और मारपीट शुरु की। पर्दानशीन औरतों पर ऐसा ज़ुल्म और बेइज़्ज़ती हुई कि जिसे सुन कर दिल कांप जाता है। मेरी बीवी को पकड़ने के लिए भी एक दौड़ पानीपत को गई मगर मियाँ रज़िउल इस्लाम साहब की साहसी माँ की दिलेरी से मेरी औरत बच गयी। उन मार खाने वालों में एक मेरा भाई मुहम्मद सईद निहायत कमसिन था और ईमान से मिलने वाले आनन्द और अटल इरादे की ख़ूबियों से बिल्कुल वंचित था। वह उस सख़्त मारपीट को न सह सका और डर गया और अपनी जान बचाने के लिए बोल उठा कि मेरा भाई दिल्ली की ओर गया है। उसी वक़्त पार्सन साहब मेरे भाई को साथ ले कर सवारी से फ़ौरन देहली पहुँचा।

इधर पंजाब में जगह-जगह मेरी तलाश शुरु हुई। दस हज़ार रुपये का इश्तेहार मेरी गिरफ़्तारी के वास्ते जारी हुआ। कैम्प अम्बाला में मुहम्मद शफ़ी के मकान की तलाशी हुई। इत्तेफ़ाक़ [संयोग] से उस वक़्त मुहम्मद शफ़ी लाहौर में मौजूद थे। यहाँ उन के भाई मुहम्मद रफ़ी और मुहम्मद तक़ी व अब्दुल करीम उन के कारिंदे गिरफ़्तार किए गए और उन को डराया गया कि अगर तुम सब हाल न बतलाओगे तो तुम को फाँसी दी जावेगी। जान के डर से मुहम्मद रफ़ी के और मौलवी मुहम्मद तक़ी साहब के बड़े पुराने कारिंदे और मसजिद-ए-ग़रीब के धर्मोपदेशक, मुहम्मद शफ़ी पर गवाह हो गए और जो पुलिस ने उन को सिखलाया, सो गवाही दे कर अपनी जान बचाई और मुंशी अब्दुल करीम जिन्होंने कहे मुताबिक़ पुलिस को गवाही न दी थी, बिना कसूर मुहम्मद शफ़ी के साथ आजन्म कारावासी हो गए।

दिल्ली में कार्रवाई और अलीगढ़ में पकड़ा जाना

पार्सन साहब ने दिल्ली में पहुँच कर आफ़त मचा दी। सरायों और शहर के दरवाज़े बन्द कर दिए। हज़ारों आदमियों की तलाशी हुई, पचासों आदमी पकड़े गए। उसी पकड़-धकड़ में पार्सन साहब को यह पता भी मिल गया कि मैं फ़लाँ शिकरम में सवार हो कर फ़लाँ वक़्त दो दूसरे आदमियों समेत अलीगढ़ कोयल को गया हूँ। उसी वक़्त तार के ज़रिये मेरी गिरफ़्तारी के लिए अलीगढ़ ख़बर दी गई और ख़ूबी-ए-तक़दीर [सौभाग्य] से अलीगढ़ में, जो मेरे घर से क़रीब दो सौ मील के है, ऐन मेरे वहाँ पहुँचने के वक़्त यह ख़बर तार पहुँची। उसी वक़्त पुलिस ने आ कर हमें घेर लिया और डिस्ट्रिक्ट सुप्रिडेंट के बंगले पर ले गए। उस ने हमें मजिस्ट्रेट साहब के पास भेज दिया और मजिस्ट्रेट ने जेल में। मैं और मेरे दोनों हमराही तार का दूसरा जवाब आने तक हवालात में रखे गए।

उसी दिन शाम को जब मैं तयम्मुम[4] कर के नमाज़ पढ़ रहा था, पार्सन साहब वहाँ पहुँच गए और मुझे क़ैद में देख कर बहुत ख़ुश हुए और हुक्म दिया कि इसे फाँसीघर में बड़ी हिफ़ाज़त [सुरक्षा] के साथ बन्द करो। उसी लम्हा मैं एक बड़े तंग अंधेरे कमरे में बन्द किया गया और दो-तीन पहरे उस के चारों तरफ़ मुकर्रर कर दिए गए। सब से पहले जेल का खाना मुझे इस जेल में मिला। दो रोटी और थोड़ा सा साग मेरे हवाले किया गया। साग में तो सिवाए मोटे-मोटे डंठलों के पत्ती का नाम न था, जिन का चबाना भी दुश्वार था। रोटियों में क़रीब चौथाई के, बालू और मिट्टी मिली थी। ख़ैर, खुदा का शुक्र कर के थोड़ा बहुत उस में से खाया। फिर उस के बाद अकसर जेलख़ानों में मैंने यदा-कदा रह कर देखा तो सब जगह क़ैदियों का खाना वैसा ही पाया क्योंकि क़ैदियों को दरअस्ल ख़ुराक कम मिलती है जिस से उन का पेट नहीं भरता और जब उन को गेहूँ पीसने के लिए दी जाती है तो वह मारे भूख के सेरों गेंहूँ चबा जाते हैं या कच्चा आटा पानी में घोल कर पी लेते हैं और आटे का वज़न पूरा करने के वास्ते आटे में रेत मिला देते हैं और इसी तरह जो उम्दा तरकारी जेल के बाग़ों में पैदा होती है, उस को तो बेच देते हैं या जेल के औहदेदार खा जाते हैं। नाकारा डंठल जिन को जानवर भी न खावें, गंडासों से काट-कूट कर क़ैदियों के वास्ते पका देते हैं। वो भूखे इसी को ग़नीमत जान कर हाथों-हाथ उड़ा जाते हैं। हालाँकि नए आए क़ैदियों को दो-एक दिन उस के खाने में तकलीफ़ होती है मगर जब बेइज़्ज़ती और तिरस्कार की तकलीफ़ उन पर छा जाती है तो पुलाव कोरमे से भी ज़्यादा उस में मज़ा पाते हैं और खा जाते हैं क्योंकि दुनिया में असल मज़ा भूख का है।

पार्सन साहब के साथ दिल्ली को रवानगी, फिर अम्बाला में जेलबंद और मार-पिटाई

दूसरे दिन पार्सन साहब हम तीनों आदमियों को साथ ले कर ख़ुशी-ख़ुशी शिकरम की सवारी से देहली के लिए रवाना हुआ। शिकरम में सवार करने के पहले मुझे बेड़ी, हथकड़ी, तौक़ (गले में लोहे की गोल हँसली) पहना कर और तौक़ में बतौर बागडोर एक और ज़ंजीर डाल कर और उस का एक सिरा हथियारबंद एक सिपाही-पुलिस के हाथ में दे कर वह निगरानी करने वाला मेरे पीछे, और पार्सन साहब और एक दूसरा इंस्पेक्टर-पुलिस मेरे दाहिने-बाएँ भरे हुए तमंचों की जोड़ियाँ ले कर और मेरे बदन से बदन मिला कर बैठ गए। उस के अलावा पार्सन साहब बार-बार मुझे राह में कहता हुआ आता था कि अगर तुम ज़रा भी हरकत करोगे तो मैं इस तमंचे से तुम्हें मार दूँगा।

[4] तयम्मुम – जल के अभाव में, नमाज़ पढ़ने से पहले, मिट्टी से हाथ-मुँह साफ़ करना, मिट्टी से वज़ू करना।

अलीगढ़ से चल कर देहली तक खाना-पानी तो मुहाल है, ज़रूरी हाजात [आवश्यकताओं] के लिए भी हम कहीं राह में न उतारे गए। आख़िर सैंकड़ों मुसीबतों के साथ उस हाल से लोहे में जकड़े हुए हम देहली में दाख़िल हुए जहाँ ले जा कर ज़ेर-ए-बंगला डिस्ट्रिक्ट सुप्रिंटेंडेंट पुलिस हमें एक तहख़ाने में ज़िन्दा क़ब्र में बन्द कर दिया। दूसरे दिन देहली से करनाल और फिर करनाल से अम्बाला हमें ले गए। जब हम अम्बाला में पहुँचे तो बहुत रात जा चुकी थी। उसी तरह बिना अन्न-जल के हम तीनों आदमियों को अलग-अलग तीन फाँसीघरों में बन्द कर दिया जहाँ हम अप्रैल के शुरू तक बराबर बन्द रहे। दूसरे दिन सुबह के वक़्त पार्सन साहब और मेजर वंक्फ़ेल (विंक्फ़ील्ड) डिप्टी इंस्पेक्टर जनरल पुलिस और कप्तान टॉई साहब डिप्टी कमिशनर अम्बाला, निस्ल मुन्कर नकीर [उन दो फ़रिश्तों की तरह जो मुसलमानों के मतानुसार क़ब्र में मुर्दों से पूछताछ करते हैं] मेरी कोठरी में आए और मुझ से कहा कि तुम इस मुक़द्दमे का सब हाल बतला दो। तुम्हारे लिए बहुत बेहतर होगा। मैंने कहा कि मैं कुछ नहीं जानता। उस वक़्त पार्सन साहब ने मुझे पहले बहुत धमकाया और फिर मारना शुरू किया। जब मेरी मार हद को पहुँची और मैं गिर पड़ा तो टाई साहब और वंक्फ़ेल (विंक्फ़ील्ड) साहब कोठरी से बाहर जा खड़े हुए और जब इस क़द्र मार पर भी मैंने कुछ न बतलाया तो वो सब के सब मायूस हो कर चले गए।

मैंने जब ये ज़ुल्म-ओ-सितम की हालत देखी तो मुझ को यक़ीन हो गया कि अब ये लोग मुझे ज़िन्दा न छोड़ेंगे। मेरे ज़िम्मे कुछ रोज़े रमज़ान के बाक़ी थे। दिन से उन की पालना शुरू कर दी। दूसरे दिन जब मैं रोज़े से था, अल्लसुबह पार्सन साहब फिर आया और वो ही कार्रवाई फिर शुरू की और थोड़ी मार-कुटाई के बाद मुझे अपनी बग्घी में बिठला कर टाई साहब के बंगले पर ले गया जहाँ फिर वो तीनों ज़ालिम मौजूद थे। उस दिन उन्होंने मेरी बड़ी चापलूसी की और कहा कि हम लिखित वचन करते हैं कि अगर तुम दूसरे शामिल लोगों और धर्मयुद्ध के हिमायतियों को बतला दो तो तुम को सरकारी गवाह कर के रिहा कर देने के साथ बड़ा ओहदा भी देवेंगे और न बतलाने की सूरत में तुम्हें फाँसी देवेंगे। मैंने इस चापलूसी पर भी इनकार किया तो पार्सन साहब उन से अंग्रेज़ी में कुछ बातें कर के मुझे एक अलग कमरे में ले गया, जहाँ ले जा कर फिर मारना शुरू किया। मैं कहाँ तक लिखूँ। आठ बजे सुबह से आठ बजे रात तक मुझ पर इस क़दर मारपीट हुई कि शायद किसी पर हुई हो। लेकिन अल्लाह की मेहरबानी से मैं सब सहन कर गया - मगर अपने रब से हर दम यह दुआ करता जाता था कि ऐ रब यही वक़्त इम्तिहान का है, तू मुझे इस वक़्त अपने इरादे पर अटल रखियो। जब वो हर तरह मायूस हो गए तो रात के 8 बजे मुझे वापिस जेलख़ाने भेज दिया। मैं दिन भर रोज़े से था। बंगले से बाहर निकल कर दरख़्त के पत्तों से रोज़ा खोल लिया

और जेल में पहुँच कर, जो मेरे हिस्से का खाना रखा था, उसे खा कर और ख़ुदा का शुक्र कर के सो गया।

जिस दिन मैं टाई साहब के बंगले पर इस मारपीट का मज़ा उठा रहा था, उस वक़्त एक मुसलमान तहसीलदार सिर्फ़ इस क़सूर पर मुअत्तल[निलम्बित] हो कर बाहर बरामदे में अकेला ग़मगीन बैठा था कि उस ने मेरी गिरफ़्तारी से चंद बरस पहले अपने किसी दीनवी [धार्मिक] मामले में मुझे एक ख़त लिखा था और उस के दुश्मन, कचहरी के कुछ कर्मचारियों ने उस ख़त के अर्थ ग़लत बयान कर दिए थे। मैं उस का ग़मगीन चेहरा देख कर अपनी तकलीफ़ भूल गया और ये ख़याल दिल में आया कि मुझ मनहूस नालायक़ को सिर्फ़ एक ख़त लिखने पर ये बेचारा बेगुनाह भी पकड़ा गया। अगर इस के बदले भी मुझे ही सज़ा हो जावे और यह रिहा हो जावे तो बहुत बेहतर है। मैं अपनी उस दुखी हालत में उस के वास्ते बहुत दुआ करता रहा मगर अल्लाह की मेहरबानी से वह बेक़ुसूर आख़िर बरी हो कर फिर अपने ओहदे पर बहाल हो गया और अब तक अव्वल दर्जे का ओहदेदार है। इस तारीख़ के बाद फिर मुझे कभी गवाह शाहिद होने का लालच नहीं दिया गया।

और पकड़-धकड़ तथा गिरफ़्तारियाँ

जब मेरी तरफ़ से कतई मायूसी हो गई, तो मुहम्मद रफ़ी और मौलवी मुहम्मद तक़ी जो मेरी तरह क़ैद में थे, मुख़्बिर [गुप्तचर] बना कर रिहा कर दिए गए। उन्हीं के बयान से बेचारा मुहम्मद शफ़ी, जिस का इस मुक़द्दमे से बहुत ही थोड़ा ताल्लुक़ था, लाहौर से पकड़ा आया और फिर उन्हीं की रहबरी [पथ-प्रदर्शन] से पार्सन साहब पटना गया, जहाँ ईशरी परशाद नाम का एक पुलिस का मुलाज़िम उस का सहायक और सुपुर्दकार हुआ। इन दोनों ने पटना में बड़ी कोशिश कर के मौलवी याहिया अली साहब और मौलवी अब्दुल रहीम साहब व इलाही बख़्श सौदागर व मियाँ अब्दुल ग़फ़्फ़ार को गिरफ़्तार कर के अम्बाला भेज दिया और फिर पार्सन साहब बंगाल गया जहाँ जगह-जगह से बहुत लोगों को गिरफ़्तार किया। अकसर लोग तो लाखों हज़ारों रुपया ख़र्च कर के रिहा हो गए और बहुतों को फाँसी देने की धमकियाँ दे कर गवाह बना लिया। सिर्फ़ एक क़ाज़ी मियाँ जान निवासी कहारखली साबितक़दम रहे, जो गिरफ़्तार हो कर अम्बाला आए। देहली के सौदागर बसीरुद्दीन व अलाउद्दीन और दूसरे बहुत से लोग देहली से भी गिरफ़्तार हो कर आए। पेशावर से ले कर बंगाल तक पूर्वी और उत्तरी कोने तक शायद कोई मालदार मुसलमान या मौलवी व नमाज़ी बाक़ी रहा हो जिसे एक दफ़ा पुलिस ने पकड़ कर उस की सामर्थ्य के मुताबिक़ अपना हाथ गरम न कर लिया हो। ग़रज़ कि इस पहले झोंके में दिसम्बर से अप्रैल तक बड़ी पकड़-धकड़ रही। अनगिनत आदमियों को डरा और सिखला कर गवाह बना लिया। इस पार्सनगर्दी के

दौरा में वो बेचारा हुसैनी थानेसरी भी जब देहली से अशरफ़ियाँ ले कर लौट रहा था, पकड़ा गया, और कुल अशरफ़ियाँ ज़ब्त करा के हमारे साथ ही आजीवन कारावासी हुआ।

इस मुक़द्दमे में हम ने देखा कि बड़े-बड़े साहब लोगों ने क़ानून व विधान सब ताक़ पर रख दिया था और ईशरी परशाद वग़ैरा हिंदू-मुसलमानों ने अपने फ़ायदे के वास्ते इस मुक़द्दमे को रस्सी से साँप और राई से पहाड़ बना दिया और हम लोगों को बदनाम कर के, नेपोलियन या महदी सोदानी जैसा अंग्रेज़ी दौलत का फ़र्ज़ी दुश्मन ठहराकर, अपना मतलब निकालना चाहा। चुनांचे ईशरी परशाद वग़ैरा, जो निहायत ही छोटे ओहदों पर थे, डिप्टी कलेक्टर वग़ैरा हो गए और धोखा दे कर सरकार से बड़ी-बड़ी ज़मींदारी और जागीर ले ली और ग़ज़न ख़ान मुख़्बिर ने तो अपने बेटे के क़ाफ़िले में भेजने का झूठा क़िस्सा घड़ कर एक दोगानू जागीर सरकार से ले लिए और डॉक्टर हंटर साहब ने जो अपनी किताब 'आवर इण्डियन मुसलमान' में ग़ज़न ख़ान की तारीफ़ और नमकहलाली व ख़ैरख़्वाही बयान की है, वह देखने लायक़ है और उस से ये बात साबित है कि जब आदमी तअस्सुब [विद्वेष] में अंधा हो जाता है, फिर तरह-तरह के धोखे और ग़लती भी खाता है।

यहाँ इस मुक़द्दमे की थोड़ी सी असली हक़ीक़त बयान करना मज़े से ख़ाली न होगा और चूंकि जिस तरह का मैंने क़सूर किया था उस की मैं एक बार काफ़ी सज़ा पा चुका हूँ, इसलिए अब मुझे सही हालात दिखाने में कुछ ख़ौफ़ भी नहीं है। इस किताब में शुरू से आख़िर तक मैंने जो बयान किया है, अपनी याद और इल्म के मुताबिक़ निहायत सही और सच्चे हालात को लिखा है।

मुक़द्दमे की पृष्ठभूमि के असल और सही हालात का बयान

सैयद अहमद साहब का हाल बयान करना फ़िज़ूल है। हिन्द के सब मुसलमान उन के हालात से वाक़िफ़ हैं और अंग्रेज़ों के लिए डॉक्टर हंटर ने अपनी किताब में शुरू से आख़िर तक चंद ख़बरों पर सैयद साहब की तवारीख़ [इतिहास] बयान की है हालांकि उस बयान में अनुचित पक्षपात करते हुए कुछ जगहों पर ग़लती भी की है। मगर हमें उस से कुछ बहस नहीं है। आख़री युद्धभूमि और युद्ध के बाद, जिस में सम्माननीय सैयद साहब मौलवी मुहम्मद इस्माइल साहब शहीद हुए, बचे हुए क़ाफ़िले के थोड़े से हिंदोस्तानी लोग मलका व सथाना के अस्थाई निवासी सैयद साहब के पास मुल्क याग़िस्तान में फ़क़ीरों के भेस में रहने लगे। हिन्द के मुसलमान अकसर उन को फ़क़ीर और बचा हुआ क़ाफ़िला समझ कर ख़ैरात के तौर पर कुछ दिया करते थे। इस लिए इस क़ाफ़िले की तादाद हमेशा चार सौ, पाँच सौ फ़क़ीरों की रही है। सशस्त्र रहना याग़िस्तान का फ़र्ज़ है, इस लिए ये लोग हथियारबन्द रहते थे। उस मुल्क के लोगों और इस क़ाफ़िले वालों के धार्मिक विश्वासों में बहुत फ़र्क़ है।

इस धार्मिक वैर से उस मुल्क के आदमी हमेशा इस क़ाफ़िले के दुश्मन रहे हैं और उन्हीं की झूठी ख़बरों से उस तरफ़ के नियुक्त अंग्रेज़ अधिकारी हमेशा फ़क़ीरों के उस क़ाफ़िले को ले कर क्रोधित रहे। यहाँ तक नौबत पहुँची कि पेशावर के साहिब कमिश्नर ने एक लम्बी-चौड़ी रिपोर्ट उस क़ाफ़िले के ख़िलाफ़ गवर्न्मेंट पंजाब को दी और किसी ने सच-झूठ या वाजिब-ग़ैर वाजिब कुछ जाँच नहीं की। आख़िर में सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट से इन फ़क़ीरों पर हमले और जंग का आदेश आ गया, जिस का नतीजा वही 1863 ई० की अम्बेला की लड़ाई है जब अंग्रेज़ी फ़ौज अपने राज्याधिकार से बाहर याग़िस्तान में बेवजह ज़बरदस्ती से चढ़ाई कर के गई, तो अख़ुंद सवात समेत सारा मुल्क याग़िस्तान सरकार से बिगड़ गया और अम्बेला की घाटी में सख़्त लड़ाइयाँ हुईं।

अगर इन बिगड़े हुए अफ़ग़ानों को लाखों रुपये रिश्वत दे कर राज़ी न किया जाता, अंग्रेज़ी फ़ौज का एक आदमी भी वापिस न आता। ये ज़ाहिर और क़ुदरती बात है कि जब कोई अपनी हद से बाहर किसी ग़ैर-मुल्क में ज़बरदस्ती लड़ने जावेगा तो अपने बचाव के लिए उस मुल्क के लोग ज़रूर मुक़ाबला करेंगे। इस वजह से इस फ़िज़ूल और ज़बरदस्ती की जंग में सरकार का बहुत नुक़सान हुआ और सख़्त नुक़्सान उठा कर आख़िर नाकाम लौट आना पड़ा। मगर इस मिसाल की ही तरह कि कुम्हार पर बस न चला तो गधी के कान ऐंठे, सरकार उन लोगों का तो कुछ न कर सकी मगर हम ग़रीब परजा पर, जो उन के हाथ में थी, तरह-तरह के तूफ़ान क़ायम कर के जिसे चाहा सज़ा दे दी और बेशुमार मुसलमानों का करोड़ों रुपये का माल ज़ब्त कर लिया।

मुसलमानों-वहाबियों से अंग्रेज़ों का विद्वेष : हंटर की किताब का असर

और आख़िर सन् 1863 ईस्वी से 10 साल तक बराबर हिंदोस्तान के मुसलमानों पर क़यामत बरपा रही। अनगिनत मुसलमान डर के मारे घरबार छोड़ कर अरब आदि देशों में जा बसे। ख़ुदग़रज़ों और ख़ुशामदियों और हमारे मुद्दई [दावा करने वालों] और दुश्मनों ने ख़ूब दिल के चाव निकाले। दस बरस तक अख़बारों में सिवाय इस क़िस्से और बहस के कोई दूसरी बात कम होती थी। गवाहों से पूछताछ और इस पकड़-धकड़ के लिए सालों तक एक महकमा रहा। जिसे चाहा पकड़ लिया और जो चाहा रिश्वत ले ली। और जिस ने न दी, उस पर उन मामूली गवाहों से गवाही दिला कर आजीवन कारावासी कर दिया और इन ख़ुदग़रज़ों ने ग़ैर मुल्क के निवासी उन सौ-दो सौ फ़क़ीरों का डर और रौब हमारी बहादुर और अक़्लमंद सरकार के दिल पर जमाया और उसे ऐसे बढ़ा-चढ़ा कर बताया कि जैसे अंग्रेज़ी-सल्तनत का ख़ात्मा करने वाले हैं। और इस जादू का किस क़द्र हमारी विजेता क़ौम पर असर हुआ है, वह डॉक्टर हंटर साहब की किताब से बख़ूबी मालूम हो सकता है कि

उस में कैसे रस्सी का साँप और राई का पहाड़ बनाया गया है। और किन-किन बेमतलब की दलीलों से विजेता और पराजित में दुश्मनी साबित की है और तुर्रा ये कि आम तौर पर बिना जाँचे-परखे तमाम हिन्द के मुसलमानों पर हमला किया है हालाँकि यह लिखने के बाद बड़े-बड़े मौक़ों पर हिन्द के मुसलमानों की ख़ैरख़्वाही और शुभकामना साबित हुई और विजेता और पराजित के दिलों को बेवजह बिगाड़ने वाली किताब दिखाने लायक़ हो गई। और शुरू में ही मौलवी अहमद साहब बहादुर सी.एस.आई. इमाम सनटीचर ने इस ख़याली पुलाव डॉक्टर हंटर को बड़ी दलीलों से रद्द कर के उस की धज्जियाँ उड़ा दी हैं और हर दावे को उसूल से ही ग़लत साबित कर दिया है। मगर तो भी डॉक्टर हंटर की उस किताब का जादुई असर अभी तक अंग्रेज़ों के दिलों पर है जो वहाबियों को अपना जानी दुश्मन मानते हैं - और हालाँकि पंजाब में शुरुआती राज्याधिकार से अफ़ग़ानों ने अनगिनत बड़े-बड़े प्रतिष्ठित अंग्रेज़ों और मेम और बच्चों को, बल्कि गवर्नर जनरल तक मार डाला, और अभी तक जहाँ मौक़ा पाते हैं, अपनी वहशियाना हरकत से बाज़ नहीं आते और उन के मौलवियों ने आम फ़तवा दे रखा है कि अंग्रेज़ों का मारना बड़ा पुण्य है, मगर तो भी अंग्रेज़ अफ़ग़ानों को अपना उस तरह दुश्मन नहीं मानते जिस तरह डॉक्टर हंटर की बदौलत वहाबियों को अपना दुश्मन फ़र्ज़ कर रखा है। हालाँकि सरकार के शुरुआती शासन में वहाबियों से अंग्रेज़ों के क़त्ल तो दरकिनार, कभी कोई बात ख़िलाफ़-ए-तहज़ीब भी घटित नहीं हुई। 1857 ईसवी की बग़ावत के आम उपद्रव के दौरान वहाबियों ने बग़ावत और फ़साद के बजाए अंग्रेज़ों के मेम और बच्चों को बाग़ियों के हाथ से बचा कर अपने घरों में छिपा कर रखा और जब कभी सरकार का इन लोगों से कोई मामला पड़ा होगा तो वहाबियों को हमेशा सच्चे ईमानदार और ग़रीब, लालचहीन, न्यायशील धर्म वाले और ख़ुदा से डरने वाले पाया होगा। मगर डॉक्टर हन्टर के जादू ने दोनों क़ौमों के बीच विद्वेष के रास्ते नफ़रत और दुश्मनी करवा रखी है, जिस का नतीजा देखिए आख़िर क्या होगा।

मजिस्ट्रेट ज़िला अम्बाला की कचहरी में मुक़द्दमे की कारर्वाई

ख़ैर, असली मतलब पर आते हैं। दिसम्बर से अप्रैल तक ये सब हो कर अप्रैल माह में मजिस्ट्रेट ज़िला अम्बाला के सामने ये मुक़द्दमा पेश हुआ और हम लोगों को फाँसीघरों से निकाल कर कचहरी में ले गए। उस वक़्त मालूम हुआ कि फाँसी की धमकी से डर कर मेरा सगा भाई मुहम्मद सईद मुझ पर, और मुहम्मद शफ़ी का सगा भाई मुहम्मद रफ़ी उस पर, गवाह हो गए और इसी ढंग से 50-60 आदमी, जिन में अकसर मौलवी मुल्लान थे, गवाह बनाए गए। लेकिन अकसर गवाह गवाही देते वक़्त भी हमारे मुँह को देख कर ज़ार-ज़ार रोते भी जाते थे, मगर बेबस थे। अगर गवाही न दें तो मारपीट के अलावा फाँसी का डर था और

गवाही हो जाने तक ये सब गवाह महकमा सेशन के क़ैदियों की तरह पुलिस की हिरासत में रखे गए थे और पुलिस ही से उन को उम्दा ख़ुराक और लिबास मिलता था। चुनांचे सरकार का लाखों रुपया इन बेकार कारर्वाइयों में ख़र्च हो गया और मारपीट की तो ये हालत थी कि अब्बास नाम का एक लड़का, जो मुद्दत तक मेरे घर में रह कर पला-बढ़ा था, जब मजिस्ट्रेटी में गवाही देते वक़्त मुझे देख कर प्रेमवश झूठा और रटाया हुआ बयान मेरे ऊपर करने से हिचकिचाया तो उसी रात को उस को ऐसी सख़्त सज़ा दी गई कि वो बच्चा उसी सदमे से सेशन कोर्ट में मुक़द्दमे की पेशी से पहले मर गया। मगर पार्सन साहब ने बदनामी से बचने के लिए फैला दिया कि उसकी मौत चेचक की बीमारी से हुई है।

जिस दिन पहले पहल हम मजिस्ट्रेटी में हाज़िर किए गए, तो मेरा भाई भी गवाहों की श्रेणी में पुलिस की हिरासत में था। एक पुलिस सिपाही के ज़रिये उस ने मुझे ये ख़बर भेज दी कि मुझ को पुलिस ने मारपीट कर तुम्हारे ऊपर गवाह बना लिया है। सो अब जिस वक़्त कचहरी में लिखित बयान होंगे तो मैं अपने उस बयान से, जो मार-पीट कर लिखाया है, मुकर जाऊँगा। उस के जवाब में मैंने उसे कहला भेजा कि मेरी क़ैद और रिहाई कुछ तुम्हारे बयान पर निर्भर नहीं है। वो ख़ुदा के हाथ में है। अगर तुम्हारा बयान शपथ पर हुआ है, तो अब उस से फिर जाने पर झूठी शपथ लेने के जुर्म में तुम को सख़्त सज़ा हो जावेगी। मैं तो पहले से फँसा हुआ हूँ, तुम्हारे फँस जाने से बूढ़ी माँ सदमे पर सदमा खा कर हलाक हो जावेगी। इस लिए बेहतर है कि तुम ने जो पहले लिखाया है, वही अब भी बयान करो लेकिन इसी बीच जब उस का इज़हार मेरे सामने होने लगा तो वो पहले इज़हार से इनकार कर गया। साहब लोग कचहरी में उस के बयान सुन कर पहले तो बड़े ग़ुस्सा हुए मगर उस की छोटी उम्र की वजह से उसे कुछ सज़ा न दे सके, बस उस का नाम गवाहों से काट कर उस को निकाल दिया। बहुत ज़्यादा गवाहों की वजह से कचहरी मजिस्ट्रेटी में एक हफ़्ते तक बस यही मुक़द्दमा पेश होता रहा। साहब लोगों का विद्वेष हम लोगों से यहाँ तक था कि जब मुक़द्दमे में उपस्थित होने के वक़्त हम ने ये दरख़्वास्त की कि हमारी नमाज़ का वक़्त आ गया है, हमें नमाज़ पढ़ने की इजाज़त बख़्शी जावे, तो ये इजाज़त भी हमें नहीं दी मगर वो हमारा क्या कर सकते थे। हम ने ऐन मुक़द्दमे के दौरान में तयम्मुम कर के बैठे हुए इशारों से नमाज़ पढ़ ली।

मुक़द्दमा सेशन कोर्ट में और हवालात के हालात

एक हफ़्ते की कार्रवाई के बाद हमारा मुक़द्दमा सेशन को सुपुर्द हुआ। इस वक़्त तक हम फाँसीघरों में अलग-अलग क़ैद थे। सेशन के सुपुर्दगी के बाद हम सब को एक जगह हवालात

में बन्द कर दिया। अब एक मुद्दत के एकांत और चिल्लाकशी[5] के बाद, हम जो सब दोस्त एक जगह जमा हुए, तो हम लोगों को बड़ी ख़ुशी हुई। मैं तो सादी का ये शेर अकसर पढ़ा करता था – 'पा-ए-ज़ंजीर पेश-ए-दोस्ताँ/ब क़े बा बेगा लगाँ दर बोस्ताँ' (पाँवों में ज़ंजीर मगर दोस्तों के सामने होना एक बाग़ में अजनबियों के साथ होने से बेहतर है)। मगर चार माह के लम्बे दौर के एकांत से भी हम लोगों को रूहानी फ़ायदा हुआ था। साफ़ हृदय के दर्पण में ईश्वरीय प्रकाश ख़ूब महसूस होते थे। नमाज़-रोज़े में कमाल का आनन्द हासिल होता था, कि शायद वो हालत बरसों के चिल्लाकशी और एकांतवास में भी हासिल न होती। मौलवी यहया अली साहब की संगत अमूल्य थी। मुहम्मद शफ़ी और अब्दुल करीम, ये दोनों आदमी किसी क़द्र नाख़ुश रहा करते थे। बाक़ी हम नौ आदमी उस हवालात में भी निहायत ख़ुश और प्रसन्नचित्त थे और ये ख़ाकसार तो जब अपने तुच्छ वंश और अल्प विद्या का ख़याल कर के अल्लाह के तोहफ़ों और उस प्रतिष्ठा को, जो मेरे हाल-ए-बदहाल पर दी गई थी, मुक़ाबिला कर के देखता तो समझता था कि मेरी मिस्ल ठीक ऐसी है कि जैसे किसी चमार के सिर पर बिना सम्बन्ध और सिफ़ारिश, बिना जायज़ हक़ और व्यक्तिगत योग्यता के, शाही ताज रख दिया जावे। मैं और मेरा हसब-ओ-नसब [कुलीनता और श्रेष्ठता] और लियाक़त कहाँ, और ये सरफ़राज़ी [सम्मान, प्रतिष्ठा] ख़ुदा के राह में इम्तिहान हो कर साबित रहना कहाँ। क्योंकि अल्लाह क़ुरान-ए-मजीद में फ़रमाता है कि ऐसे इम्तिहानों में पैग़म्बर और सहाबा [हज़रत मुहम्मद के घनिष्ठ मित्र] लोग भी घबरा जाते थे। जैसे फ़रमाया है – ख़ुदावंद तआला फ़रमाता है कि हम ने ऐसा सख़्त इम्तिहान किया और पकड़ कर झड़झड़ाया, यहाँ तक कि ख़ुद पैग़म्बर और उस के सहाबी बोल उठे कि कहाँ है मदद अल्लाह की? इस सब्र और मज़बूती के ईनाम को ख़याल कर के शुरू से आख़िर तक मेरी ज़बान पर तो शुक्र ही शुक्र जारी रहा, कभी सब्र करने की नौबत ही न पहुँची। मौलवी यहया अली साहिब की हालत इस से भी बढ़-चढ़ कर थी। वो अकसर इस रुबाई अरबी के मज़मून को अदा किया करते थे – नहीं परवाह करता हूँ मैं जब कि मारा जाऊँ मैं और हर मुख़्लिस [निश्छल] मुसलमान किसी करवट पर हो, राहे ख़ुदा में फिर कर जाना मेरा तरफ़ ख़ुदा की, और ये अल्लाह के हाथ में है और अगर चाहे बरकत देवे, ऊपर मिला दे टुकड़ों परागंदा [अस्त-व्यस्त] के। और यह वो रुबाई है जब एक सहाबी को मक्का के काफ़िर फाँसी देने लगे तो उस ने निहायत जवाँमर्दी से ये रुबाई पढ़ कर ख़ुदा की राह में जान दी और शहीद हुआ।

[5] चिल्लाकशी – चालीस दिन तक एकांत में बैठ कर ईश्वर की उपासना करना।

कुछ अरसे के बाद आख़िर अप्रैल में यह मुक़द्दमा मेजर एडवार्ड्स साहब महकमा सेशन में पेश हुआ। वहाँ भी एक हफ़्ते तक कार्रवाई होती रही। मुहम्मद शफ़ी और अब्दुल करीम की तरफ़ से मिस्टर गुडाल एक बैरिस्टर महकमा मजिस्ट्रेटी से वकील और पैरोकार थे और जब ये मुक़द्दमा कचहरी सेशन में पेश हुआ तो मौलवी मुहम्मद हसन साहब और मौलवी मुबारिक अली साहब ने, जो पटना वालों की तरफ़ से पैरोकार थे, मिस्टर प्लोडन नामक एक दूसरे वकील को बोल आया। ये वकील बड़ा तजुरबे वाला और समझदार एक बूढ़ा आदमी था। जब प्लोडन साहब अपना मुख़्तारनामा ले कर हवालात में हमारे दस्तख़त करवाने को आया तो मौलवी अब्दुल रहीम साहब, मौलवी यहया अली साहब व इलाही बख़्श सौदागर व हुसैनी व क़ाज़ी मियाँ जान साहब व अब्दुल गफ़्फ़ार व मुंशी अब्दुल ग़फ़ूर 8 प्रतिवादियों ने उस पर दस्तख़त कर दिए। मगर मैंने अपने दस्तख़त नहीं किए और कहा कि मैं ख़ुद वकील हूँ, मैं अपनी जवाबदेही आप करूँगा।

अब सरकार की तरफ़ से मेजर वंक्फ़ेल (विंक्फ़ील्ड) साहब और पार्सन साहब पैरोकार और वकील थे। और 10 प्रतिवादियों की तरफ़ से दो वकील और मैं ख़ुद अपनी जवाबदेही करता था। जब कोई गवाह पेश होता तो पहले उस का बयान साहब सेशन जज ख़ुद लिखते और पूछताछ करते। उस के बाद सरकारी वकील और उस के बाद प्रतिवादियों के दो वकील और सब के आख़िर में ये ख़ाकसार पूछताछ करता। क्योंकि मैं सब से ज़्यादा इस मुक़द्दमे से वाक़िफ़ और उन गवाहों के हालात और ज्ञान और योग्यता से भी बख़ूबी परिचित था और इस वकालत में भी पूरा तजुर्बा हासिल और उस वक़्त बनिस्बत दूसरों के मुझे ख़ुदा तआला पूछताछ के सवाल भी ख़ूब सुझाता था, अकसर गवाह मेरे सवालों के जवाब से तंग आ कर दुहाई दुहाई करने लगते थे। और आम सभा होने से बहुत से योरोपियन और देसी तमाशाबीन हाज़िर हो कर ये तमाशा देखा करते थे। चार असेसर, दो हिन्दू दो मुसलमान रईस, ज़िला अम्बाला से बुलाये गए थे।

जब दोनों तरफ़ की सब गवाही तमाम हो गयी तो प्रतिवादियों के जवाब लिए गए। 10 मुजरिमों का जवाब तो उन के वकीलों ने लिखित तौर पर दाख़िल किया। आख़िर में सेशन जज साहब ने मेरी तरफ़ मुख़ातिब हो कर फ़रमाया - बोलो अब तुम्हारा क्या जवाब है। तब मैंने सरकार द्वारा दाख़िल किए गए हर सबूत की काट बयान कर के अपना जवाब निहायत विस्तृत और सब दलीलों के साथ लिखाना शुरू किया। जज साहब ने उस में से किसी तरह लिखा कर बड़े ग़ुस्से से मुझ से कहा कि इस जवाब से कुछ फ़ायदा नहीं है, बेहतर ये है कि तुम अपने क़सूर का इक़्बाल [स्वीकार] कर के अदालत की मेहरबानी और रहम से अपनी माफ़ी मांगो। मैं ये प्रतिकूल शिक्षा का सबक़ सुन कर चुप हो गया और कहा कि मैं सिर्फ़

इन्साफ़ चाहता हूँ, सो आप से उस की उम्मीद नज़र नहीं आती। उस के बाद मैंने 10-12 आदमी गवाह मेरी बेगुनाही साबित करने के लिए बुलाने चाहे, सो वो भी नहीं बुलाये गए। बल्कि जब वाक़िआ [घटना] दो मई रोज़ सुनाने हुक्म के, अपने गवाहों को मैंने आप हाज़िर करवा दिया तो भी उन के बयान न लिखे गए। मगर मुहम्मद शफ़ी और दूसरे अकसर प्रतिवादियों की तरफ़ से बहुत से गवाह गुज़रे लेकिन बेसूद [व्यर्थ]। कौन सुनता है? बल्कि मुहम्मद शफ़ी की तरफ़ से 100 से ज़्यादा सर्टिफ़िकेट ख़ैर-ख़्वाही व ख़ैरसिगाली [शुभेच्छा और शुभकामना] सरकार व उम्दा कारगुज़ारी के भी पेश हुए जिन के सम्बन्ध में इस धर्म सम्बन्धी पक्षपात करने वाले जज ने ये लिखा है कि

इन सार्टिफ़िक्टों का हर हर फ़िक्रा [वाक्य, जुमला], मुहम्मद शफ़ी के मुजरिम और सख़्त सज़ा के क़ाबिल होने पर एक ऊँची दलील और काटने वाला सबूत है। हमारे लायक़ और पुराने वकील मिस्टर प्लोडन ने बहुत सी क़ानूनी किताबों और विलायती दृष्टांतों से साबित कर के ये जवाब लिखा था कि "मलका सथाना वग़ैरा जगहें जहाँ ये जंग, जिस की मदद करने का इन लोगों पर इल्ज़ाम है, घटित हुआ, सरकार के राज्याधिकार से बाहर हैं और लफ़्ज़ जंग करना, पूजनीय देश या बग़ावत भारत के दण्ड विधान की दफ़ा 121 के स्पष्टीकरण के तहत सरकार के राज्याधिकार की सीमाओं के बाहर किसी जंग की वारदात पर सादिक़ [सत्यनिष्ठ] नहीं आता। चुनांचे दफ़ा 121 के तहत मिसाल में साफ़ लिखा है कि अमुक व्यक्ति जो भारत के तहत आने वाले मुल्कों में है, बाग़ियों को हथियार पहुँचने से एक बग़ावत में मदद दे, जो सैलून [सिलोन/श्रीलंका] में स्थित पूजनीय महारानी की सरकार के मुक़ाबले में (रानी के क़ब्ज़े के मुल्कों की सीमाओं के अन्दर) हुई हो तो अमुक व्यक्ति पूजनीय महारानी के मुक़ाबले में जंग करने में मदद का मुजरिम होगा। इस वास्ते इन लोगों को इस दफ़ा के नीचे सज़ा नहीं हो सकती।"

जब साहब सेशन जज और दूसरे अंग्रेज़ों ने ये दलील वकील की सुनी तो एक दम सर्द हो गए और सिवाए हाँ और बजा [मुनासिब, ठीक] व मर्हबा [बहुत ख़ूब] के कोई जवाब न बन आया। मगर इस मुक़द्दमे में तो अंग्रेज़ों को परले सिरे का धार्मिक पक्षपात था। शुरु काररवाई से इस मुक़द्दमे में कानून ताक़ पर रख दिया था। इस वास्ते बाद लेने इस जवाब के, वास्ते आपसी सलाह के, मुक़द्दमे को चंद रोज़ के वास्ते मुल्तवी [स्थगित] कर दिया गया और जॉन लॉरेंस साहब बहादुर गवर्नर और दूसरे बड़े-बड़े अफ़सरों से, जो चाहे-अनचाहे हमारा ख़ात्मा ही चाहते थे, मश्वरा किया गया। उन को तो ख़ुदग़रज़ों ने ये सुझा रखा था कि अगर इन चंद ग़रीबों को फाँसी दे कर वहाबियों का हिन्द से ख़ात्मा न कर दोगे तो भारत की सरकार के राज्याधिकार में रहना मुहाल है। फिर क़ानून को कौन सुनता है?

एक लम्बे स्थगन के बाद 2 मई 1864 को फिर एक आख़री इज्लास सेशन हुआ और जज साहब अपनी राय और सज़ा का आदेश अपने घर पर बैठ कर, गवर्नर साहब के इशारे के अनुमान पर लिख लाए थे।

फाँसी की सज़ा का फ़ैसला

उस दिन इज्लास में बैठने के साथ ही पहले चारों असेसरों से सेशन जज साहब ने मुख़ातब [सम्बोधित] हो कर फ़रमाया कि आप लोगों ने इस मुक़द्दमे को अव्वल से आख़िर तक सुना। अब जो आप की राय हो लिख कर पेश करो। हम ने देखा कि चारों असेसर उस वक़्त भी हमारी शक्लों को देख-देख आँसू भर-भर लाते थे और दिल से हमारी रिहाई के ख़्वाहाँ [इच्छुक] थे। मगर जब साहिब जज व कमिश्नर की राय को हमारी सज़ा पर आमादा पाया तो मारे डर के उन्होंने भी लिख दिया कि हमारे नज़दीक भी दर्ज व्यक्ति का जुर्म लेन-देन के निश्चय को ले कर उन पर साबित है। फिर तो साहिबे जज व कमिश्नर ने यह क़ानूनी बहाना मिलने के बाद अपनी तज्वीज़ जो पहले से मेज़ पर लिखी हुई रखी थी, पढ़नी शुरू की, जिस में आएँ बाएँ शाएँ कर के प्लोडन साहब की उम्दा दलील का जवाब था और फिर पहले मेरी तरफ़ मुख़ातब [सम्बोधित] हो कर फ़रमाया कि तुम बहुत अक़्लमंद और ज्ञानी और क़ानून के जानकार अपने शहर के नम्बरदार और रईस हो। तुम ने अपनी सारी अक़्लमंदी और क़ानूनदानी को सरकार की मुख़ालफ़त [विरोध] में ख़र्च किया। तुम्हारे ज़रिए से आदमी और रुपया सरकार के दुश्मनों को जाता था। तुम ने सिवाय इनकार बहस के, कुछ बहाने से भी सरकार के प्रति शुभ इच्छा का दम नहीं भरा। और बावजूद हिदायत के, उस के साबित कराने में कुछ कोशिश न की। इस वास्ते तुम को फाँसी दी जावेगी और तुम्हारी कुल जायदाद ज़ब्त सरकार की होगी और तुम्हारी लाश भी तुम्हारे वारिसों को न दी जावेगी, निहायत ज़िल्लत के साथ जेल के क़ब्रिस्तान में गाड़ दी जावेगी। और आख़िर में ये कलमा [वाक्य] भी फ़रमाया कि मैं तुम को फाँसी पर लटकता हुआ देख कर बहुत ख़ुश होऊँगा।

उल्लिखित साहब का ये सारा बयान मैंने निहायत ख़ामोशी से सुना। मगर उस आख़री जुमले के जवाब में मैंने कहा कि जान देना और लेना ख़ुदा का काम है, आप के इख़्तियार [अधिकार] में नहीं है। वो रब्ब-उल-इज़्ज़त ताक़तवर है कि मेरे मरने से पहले तुम को हलाक करे [मारे]। लेकिन इस पुण्य भरे जवाब पर वह बहुत ख़फ़ा हुआ मगर फाँसी का हुक्म देने से ज़्यादा और मेरा क्या कर सकता था? जिस क़द्र सज़ाएँ उस के इख़्तियार [अधिकार] में थीं, सब दे चुका था। लेकिन उस वक़्त मेरे मुँह से यह देववाणी वाक्य कुछ ऐसा निकला था कि मैं तो इस वक़्त तक ज़िन्दा मौजूद हूँ मगर वो अहंकारी इस हुक्म देने के थोड़े अरसे के बाद मुल्क-ए-रूम [तुर्की देश] में यमलोक का मुसाफ़िर हुआ। मुझ को अपनी उस वक़्त की

कैफ़ीयत [हालत] ख़ूब याद है कि मैं इस हुक्म फाँसी को सुन कर ऐसा ख़ुश हुआ था कि शायद सातों महाद्वीपों यानी सारी दुनिया की सल्तनत मिलने से भी इस क़द्र सुरूर [आनन्द] न होता। सिर्फ़ इस हुक्म मौत के सुनने से वह कैफ़ीयत हुई कि गोया जन्नत-ए-फ़िरदौस [देवलोक] और हूरें आँखों के सामने फिरने लग गईं।

मेरे बाद मौलवी यहया अली साहब और उन के बाद मुहम्मद शफ़ी और उन के बाद नम्बरवार ग्यारह आदमियों को हुक्म सज़ा का सुना दिया जिन में मैं और मौलवी यहया अली साहब और हाजी मुहम्मद शफ़ी, तीन आदमियों के वास्ते फाँसी वग़ैरा ऊपर कहे हुए के अनुसार, और बाक़ी आठ मुजरिमों को कुल जायदाद की ज़ब्ती समेत अण्डमान-निकोबार के टापुओं पर आजीवन कारावास की सज़ा हुई। मैंने मौलवी यहया अली साहब को भी निहायत बश्शाश [ख़ुश] पाया लेकिन मुहम्मद शफ़ी के चेहरे का रंग बदल गया था। फिर भी उन्होंने भी अपनी तबियत को बहुत थांबा। उस दिन पुलिस वाले और तमाशाबीन मर्द औरत बड़ी गिनती में हाज़िर थे। कचहरी ज़िला अम्बाला का क़रीब पूरा इहाता लोगों से भरा हुआ था। हुक्म सुना कर उस का चुप होना था कि बड़ी संख्या में हथियारबंद पुलिस के लोग ज़ेरे हुक्म कप्तान पार्सन साहब हमारे गिर्द हो गए। जब मैं अदालत के दरवाज़े से बाहर निकला था तो कप्तान पार्सन साहब मेरे नज़दीक आ कर कहने लगा कि तुम को फाँसी का हुक्म मिला है, तुम को रोना चाहिए। तुम किस वास्ते इतना ख़ुश है। मैं चलते-चलते उस को बोला कि शहादत की उम्मीद पर, जो सब से बड़ी ने'मत [ईश्वर की दी हुई दौलत] है और तुम काफ़िर हो, उस को क्या जानो?

इस मक़ाम पर यह बात भी बयान कर जाना ज़रूर है कि पार्सन साहब भी एडवर्ड साहब से बढ़ कर धार्मिक पक्षपात से ग्रस्त, तंगनज़र था और मुक़द्दमे में शुरू से उस ने हम लोगों पर बहुत ज़ुल्म किया था कि जिस का ब्योरा ये क़लम भी नहीं कर सकती। मगर बदी का बदला लेने वाला महान सच्चा ख़ुदा तो मौजूद था गो उस के काम देर और सहूलियत से होते हैं। हम को सज़ा हो कर थोड़े दिन गुज़रे थे कि ये बेख़ौफ़ और अहंकारी भी दुनिया ही में पागल हो कर और अपना ग़ुस्सा आप खा कर यमलोक का मुसाफ़िर हुआ।

जेलख़ाना, फाँसीघर और चीफ़ कोर्ट में मुक़द्दमा पेश होना

उस दिन तमाशाबीन लोग हमारी फाँसी का हुक्म सुन कर अकसर ज़ार-ज़ार रोते थे। कोई ख़ुदा की मर्ज़ी और रज़ा बक़ज़ा [मौत की स्वीकृति] से अपने रंज को रोकता था। जेलख़ाना तक बीसों मर्द-औरत इर्द-गिर्द सड़क के हमारा मुँह देखते हुए चले गए। उसी हालत के अन्दर पुलिस हम को जेलख़ाने में ले गयी और वहाँ पहुँच कर हमारे कपड़े और सामान्य कपड़े उतार कर ज़ब्त कर लिए और हम सब को गेरुआ लिबास पहना दिया। हम

तीन फाँसीवालों को अलग-अलग तीन फाँसीघरों में बन्द कर दिया। बाक़ी आठ आदमियों को जेलख़ाने में दूसरे क़ैदियों के साथ मिला दिया। हमारे वास्ते बड़े एहतिमाम [प्रयोजन, इन्तज़ाम] से तीन नई फाँसियाँ और उस के रेशमी रस्से तैयार हुए और उधर मुक़द्दमे के आदेशपत्र को फाँसी की मंज़ूरी के वास्ते महकमा चीफ़ कोर्ट पंजाब में भेज दिया। हमारे दोनों वकील भी कुछ ज़्यादा मेहनताना ले कर मौलवी हसन साहब और मौलवी मुबारक अली साहब व मुहम्मद सईद बरादरम [भाई] व अब्दुल्ला पिसर [पुत्र] मुहम्मद शफ़ी वग़ैरा समेत चीफ़ कोर्ट में पहुँचे। और मेजर वंक्फ़ेल [विंक्फ़ील्ड] वग़ैरा सरकारी वकील और पैरोकार भी सब से पहले जा हाज़िर हुए। इधर जेल में नक़ल हुक्म मंगवाने में भी एक अपील ख़ूब युक्तिसंगत लिख कर, सुप्रिटेंट जेल की मार्फ़त चीफ़ कोर्ट को रवाना कर दिया।

मैंने सुना है कि महक़मा चीफ़ कोर्ट में भी चन्द इज्लासों में बड़ी धूम-धाम के साथ ये मुक़द्दमा पेश हुआ। और वहाँ भी मिस्टर प्लोडन हमारे वकील ने बड़ी दलीलों से तमाम तरह के आग्रह के साथ ये कहा कि ज़ेर-ए-दफ़ा 121 ये लोग हरगिज़ क़ैद नहीं हो सकते। इस दफ़ा की रूह से उन को क़ैद करना सरासर ज़ुल्म और ख़िलाफ़ क़ानून है। कोई दूसरी दफ़ा उन पर क़ाइम करो। मिस्टर रॉबर्ट कस्ट साहब ने, जो उस ज़माने में जुडिशल कमिश्नर थे, इस क़ानूनी दलील वकील को अदालत की सभा में मंज़ूर कर लिया। लेकिन वहाँ भी मश्वरा करने के वास्ते चंद रोज़ का स्थगन किया गया।

इस बीच में अख़बार वालों ने अपनी-अपनी राय लगा दी कि ये लोग रिहा हो चुके, सिर्फ़ हुक्म सुनाना बाक़ी रह गया है। हमारे घर वालों को तो हमारी रिहाई पर इस क़द्र यक़ीन हो गया था कि हमारे घर से एक नया जोड़ा कपड़ों का भी तैयार हो कर आ गया था कि बरोज़ रिहाई हम इस को पहन कर घर को आवेंगे। चीफ़ कोर्ट का स्थगन बहुत हुआ, शायद विलायत तक की राय हम को ख़िलाफ़ क़ानून क़ैद करने पर ली गयी। 2 मई तारीख़ सुनाने हुक्म फाँसी से 16 सितम्बर तक हम फाँसीघर में बन्द रहे। जेल के लोग हमारे फाँसी देने का सामान तैयार कर रहे थे। और उधर हम अंग्रेज़ों का तमाशा बन रहे थे। अनगिनत साहब लोग और मेम रोज़ाना हमें देखने को फाँसीघर में आते। मगर बख़िलाफ़ दूसरे आम फाँसी वालों के, हम को निहायत ख़ुश पा कर ये यूरोपियन तीर्थयात्री बहुत तअज्जुब [आश्चर्य] करते और अकसर हम को पूछते कि तुम को बहुत जल्द फाँसी होगी, तुम ख़ुशी किस वास्ते करते हो। हम उस के जवाब में सिर्फ़ इसी क़द्र कह देते कि हमारे मज़हब में ख़ुदा की राह में ऐसे ज़ुल्म से मारे जाने पर दर्जा शहादत का मिलता है, इस वास्ते हम को ख़ुशी है।

शान-ए- इलाही से हम फाँसीघर में ही थे कि बक़रा ईद आ गयी। हम को ख़याल हुआ कि आज मुसलमान ख़ूब क़ुर्बानी का गोश्त उड़ाते होंगे। इस ख़याल के थोड़े देर बाद पुलाव

और क़ोरमा और क़ुल्या और कबाब वग़ैरा बक़रा ईद के खाने सब हमारे वास्ते उसी फाँसीघर मे ग़ैब [भाग्य, नियति] से मौजूद हो गए। हम ने ख़ूब सेर [तृप्त] हो कर खाया और शुक्र अदा किया। एक दिन रात को उसी फाँसीघर में हम तीनों आदमी एक जगह बैठे हुए बातें करते थे कि उस वक़्त हमारे सब मुहाफ़िज़ [रक्षक] आपस में सलाह कर के हम से कहने लगे कि तुम तीनों आदमी इस वक़्त अंधेरी रात में भाग जाओ। हम को असावधानी के जुर्म में कुछ क़ैद वग़ैरा की सज़ा हो जावेगी, सो हम इस को भुगत लेवेंगे लेकिन तुम्हारी तो जान बच जावेगी। हम लोगों ने उन की बात सुन कर उन की हिम्मत और अच्छी नीयत का शुक्रिया अदा किया और कहा कि ख़ुदावन्द-ए-करीम [मेहरबान ख़ुदा] दोनों जहाँ में इस नेकनियति का फल तुम को देवे मगर हम नहीं भागेंगे। जब ख़ुदा छुड़ावेगा, तो आप से आप छूट जावेंगे। और मैंने ये भी कहा कि जब उस की मर्ज़ी न थी तो भाइयों, मैं अलीगढ़ से पकड़ा हुआ आ गया। अब हम से ऐसी हरकत न होगी। बक़ौल शाइरी – रिश्त-ए-दरगर्दनम अफ़्क़दे दोस्त/ मी बर्द हर जा के ख़ातिरख़्वाहे ओस्त [मेरे दोस्त ने मेरी गर्दन में पट्टा डाल रखा है, वो जिधर चाहता है उधर ही मुझे खैंच लेता है।]

एक बुज़ुर्ग साथी की तथा माँ की मृत्यु

जब हम फाँसीघर मे क़ैद थे तो क़ाज़ी मियाँ जान साहब बीमार हो कर अस्पताल में गए मगर अस्पताल से भी अकसर हमारी मुलाक़ात के वास्ते फाँसीघर में आया करते थे। अपने मरने से एक दो दिन पहले उन्होंने ख़्वाब देखा था कि एक तख़्त जवाहरनिगार [रत्न जड़ा तख़्त] आसमान से उतरा, उन को उस पर बिठला कर आसमान पर ले गए। उस के दूसरे दिन उन की मृत्यु हो गयी। और ताबीर-ए-ख़्वाब [स्वप्नफल] वही हुई कि वो तख़्त फ़िरदौस-ए-बरीं [उच्चतम स्वर्ग] से उन के लेने के वास्ते आया था और ले गया। ये बुज़ुर्ग हम लोगों में सब से ज़्यादा वृद्ध थे मगर इस सब के बावजूद बड़े साबिर और मुस्तक़िल मिज़ाज [सहनशील और दृढ़चित्त] थे। खुदावन्द-ए-करीम उन को जन्नत नसीब करे। हमारे हमराहियों ने उन को ग़ुस्ल औऱ कफ़न दे कर और उन की नमाज़-ए-जनाज़ा [मृतक की शांति के लिए जनाज़ा के वक़्त की नमाज़] पढ़ कर जेल के क़ब्रिस्तान में उन को दफ़्न करा दिया।

जब हम फाँसीघर में क़ैद थे, उन्हीं दिनों में एक रात को बमुक़ाम थानेसर मेरी वालिदा [माँ] को एक सांप ने काटा। सुना है कि वह भी बहुत मज़बूती से जाँबहक़ [प्राण ईश्वर के समर्पित] तस्लीम [स्वीकार] हुई। बहुत लोगों ने अल्लाह को न मानने वाले, कुछ देवपूजक झाड़ फूँक वालों को बुला कर उन की सेहत के वास्ते कुछ रसूमात शिर्क [अनेकेश्वरवादी रस्में] करना चाहा था। मगर उन्होंने फ़रमाया कि मेरे घर से नया, धर्मविरुद्ध आचरण मुद्दत

से उठ गया है। अब मैं अपने बेटे की ग़ैर हाज़िरी में अपने घर मे शिर्क न होने दूँगी। जब उस के मरने की ख़बर हम को फाँसीघर में पहुँची तो मौलवी यहया अली साहब ने मुराक़बा में [ईश्वर में ध्यान लगाते हुए] उसी रात को देखा कि वह बड़ी शान व शौकत से जन्नत में हैं। मौलवी साहब ने उन से पूछा के ये उच्च दर्जा आप को किस सबब से मिला। उन्होंने फ़रमाया के मेरे बेटे की मुसीबतों पर सब्र करने के सबब से है, मुझ को मेरे रब ने बख़्श दिया और ये दर्जा इनायत किया।

एक भविष्यवाणी और उस का सच साबित होना

एक ये बात भी इस मुक़ाम पर क़ाबिल-ए-तज़्किरा [चर्चा करने लायक़] है कि जिस ज़माने में हम लोग फाँसीघर मे क़ैद थे, उन्हीं दिनों में एक मक़्बूल [सर्वप्रिय] बारगाहे इलाही [अल्लाह के दरबार] पर अल्लाह रब-उल-इज़्ज़त ने ये प्रकट करा दिया था कि हम लोगों को फाँसी न होगी और काले पानी को जाना होगा और मैं वहाँ से फिर ज़िन्दा बाइज़्ज़त वापिस आऊँगा। हमारी फाँसी के स्थगन का हुक्म इस पेशीनगोई [भविष्यकथन] के कोई दो माह बाद हुआ। मगर हम लोगों में इस भविष्यकथन से पूरा पूरा यक़ीन काले पानी को जाने और फाँसी के स्थगन का हो गया था। चुनांचे मैंने अपने भाई और कुछ दोस्तों को उसी वक़्त इस ख़ुशख़बरी की इतिलाअ [सूचना] भी लिख दी थी। मगर उस वक़्त, कि जब सारी सल्तनतअंग्रेज़ी सब की सम्मति से हमारी फाँसी देने पर मुस्तैद थी और ऊपरी तौर पर दिखाई देने वाली कोई सूरत फाँसी स्थगित होने की नज़र न आती थी, शायद (ही) किसी को इस भविष्यकथन का यक़ीन हुआ हो क्योंकि वो एक ऐसा वक़्त था कि अगर कोई शख़्स हमारे वास्ते ज़रा भी हमारे कुशलमंगल के लिए एक भी वाक्य कहता तो क़ैद हो जाता था। बीसों आदमी हमारे शहर के सिर्फ़ इसी क़िस्म के क़सूरों में क़ैद हो गए कि उन के पास से कोई मेरा एक असबाब [सामान] निकल आया या बाद ज़ब्ती या नीलाम मेरे मकानात के, मेरे बाल-बच्चों को किसी ने अपने घर में रहने को जगह दे दी। उस वक़्त अगर शाह-ए-रूम [रूम देश का राजा] भी मेरी सिफ़ारिश अंग्रेज़ों से करता तो कभी मंज़ूर न करते। ऐसी हालत में फाँसी स्थगित होना महज़ [सिर्फ़] ग़ैर-मुमकिन और ख़याल से परे थी।

अब उस दिलों में दयाभाव पैदा कर देने वाले की ऊपरी काररवाई को सुनिए। जब बहुत से साहब और मेम हम को फाँसीघर में निहायत शादाँ और फ़रहाँ [प्रसन्न] देख गए तो ये चर्चा सब साहब लोगों में फैला। तब तो उन साहब लोगों ने, जो हमारे जानी दुश्मन थे, ये ख़याल किया कि ऐसे दुश्मनों को मुँहमाँगी मौत शहादत देना नहीं चाहिए बल्कि उन को काले पानी भेज कर वहाँ की मुसीबतों और सख़्तियों से हलाक कराना [मरवाना] चाहिए। हम ने देखा कि हमारे उसी भविष्यकथन के मुताबिक़, यकायक साहब डिप्टी कमिश्नर

अम्बाला 16 सितम्बर को फाँसीघर में तशरीफ़ लाए और चीफ़ कोर्ट का हुक्म हम को पढ़ कर सुना दिया कि तुम लोग फाँसी पड़ने को बहुत दोस्त रखते हो और शहादत समझते हो। इस वास्ते सरकार तुम्हारी दिल चाहती सज़ा तुम को नहीं देवेगी। तुम्हारी फाँसी सज़ा आजीवन कारावास काला पानी से बदली गई है। बाद सुनाने इस हुक्म के, हम को फाँसीघर से निकाल कर दूसरे क़ैदियों के साथ बारगों [बैरकों] में मिला दिया और जेलख़ाने के दस्तूर [नियम-कायदा] के मुताबिक़ कैंची से हमारी दाढ़ी-मूँछ, सर के बाल वग़ैरा सब तराश कर मुण्डी भेड़ सा बना दिया। उस वक़्त मैंने देखा कि हमारे मौलवी यहया अली साहब दाढ़ी के कतरे हुए बालों को उठा-उठा कर कहते थे कि अफ़सोस न कर, तू ख़ुदा की राह में पकड़ी गई, उस के वास्ते कतरी गई।

एक तमाशा क़ुदरत-ए-इलाही का और भी क़ाबिल ज़िक्र करने के है कि बवजह मेरे भारी मुजरिम होने के, मेरे वास्ते एक रेशमीन रस्सा और फाँसी की लकड़ी ख़ास तौर पर निहायत मज़बूत तैयार हुई थी। मगर ज़बरदस्ती तक़दीर से मेरी फाँसी तो रद्द हो गई। उसी बीच में बजुर्म क़त्ल एक ख़ास विलायतज़ा इंग्लिशमैन गोरा को फाँसी का हुक्म मिला और वो सब सामान फाँसी जो मेरे वास्ते तैयार हुआ था, उस बेचारे योरोपियन हमक़ौम के नसीब हुआ। "चाह कन्देरा चाह दरपीश" – जिस ने कुआँ खोदा, उसी के सामने आ गया यानी वही उस में गिर गया – जो दूसरों के लिए कुआँ खोदता है, वह ख़ुद उसी में गिर जाता है। जो रस्सा बड़े एहतिमाम [प्रयोजन] से मेरे गले में डालने के वास्ते तैयार हुआ था, उस सर्वशक्तिमान, दिलों को बदल देने वाले ने एक ज़ात-भाई के गले में डलवाया और मुझ को साफ़ बचा लिया। इस अजीब घटना के बाद लोग अल्लाह की इस ज़िद को अल्लाह का एक बड़ा संकेत समझते थे। इसी सबब से बाद फाँसी उस गोरे की, वो रस्सा भी टुकड़े-टुकड़े हो कर प्रसाद्स्वरूप लोगों में तक़सीम हो गया [बांट दिया गया]। इस मक़ाम पर कोई ये ख़याल न करे कि किसी काले हैवान के क़त्ल पर ये योरोपियन फाँसी पाए थे। हरगिज़ नहीं। क्योंकि सरकार की सत्ता की शुरुआत से उस पवित्र भूमि के लोगों ने हज़ारों काले हैवान मार डाले। कभी किसी को वतनी भाई डॉक्टर ने ज्ञान सम्बन्धी समस्या की व्याख्या से साफ़ निकलवा दिया, कभी भाईबंदों जूरी ने छोड़ दिया, कभी पुलिस या मजिस्ट्रेट की मेहरबानी से बवजह अदम-सबूत [सबूत के अभाव में] रिहा हुआ, अगर किसी ऐसे ही बदबख़्त ने कोई हीला न पाया और नौबत सज़ा तक ही पहुँची, तो कालों के क़त्ल पर सिर्फ़ जुर्माना या एक-दो माह क़ैद हल्की की सज़ा हुई और जहाँ क़ैद में भी हमारे नवाबों से ज़्यादा उन के वास्ते सामान-ए-ऐश मुहैया रहता है, ये मक़ाम इस बहस का नहीं है। इतने को ही काफ़ी मान कर अब आगे हमारी बिपता को सुनिये।

जेल में श्रम के नाम के काम, भोजन और बीमारी ; अस्थाई शान और प्रतिष्ठा

दूसरी फ़ज्र [सुबह] को हम तीनों आदमी भी दूसरे क़ैदियों के साथ मशक़्क़त [श्रम] में भेजे गए। नबी बख़्श दारोग़ा जेल और रहीम बख़्श नायब दारोग़ा और दूसरे सब देसी अफ़सर गो हमारे इनायतफ़र्मा [कृपालु] थे, मगर बवजह ख़ौफ़ साहब सुपरिन्टेंडेंट जेल के हम तीनों आदमियों को काग़ज़ कूटने की ढेंकली [एक यंत्र] में, जो उस जेल में सब से ज़्यादा सख़्त काम है, दे दिया। थोड़ी देर तक जब हम ने उस को पाँव से हिलाया तो पाँव शल [शिथिल] हो गए मगर उसी वक़्त डॉक्टर हड्सन साहब उर्फ़ रेलू सुपरिन्टेंडेंट जेल, काग़ज़घर में तशरीफ़ लाए और हम को ढेंकली के सख़्त काम में देख कर दारोग़ा पर बहुत ख़फ़ा हुए। और हम को उस सख़्त काम से निकाल कर मुहम्मद शफ़ी और मौलवी यहया अली साहब को तो सूत खोलने के आसान काम में दे दिया और मेरा हाथ पकड़ कर मुझ को एक नाद [हौद] गली के पास, जिस में काग़ज़ फाड़ कर भिगोते थे, ले गए और मुझ से फ़र्माया कि ये दफ़्तर की रद्दी है। ग़ालिबन [शायद] तुम्हारे हाथ के लिखे हुए काग़ज़ भी इस में ज़रूर होंगे। तुम अपना दिल बहलाने को इन काग़ज़ात को पढ़ा करो और रद्दी को फाड़ कर इस नाद में डालते जाओ। फ़ज़्ल-ए-इलाही [ईश्वर की दया] से मेरी मशक़्क़त भी दिललगी और मनबहलाव से ख़ाली न थी और हमारे दूसरे साथी भी ख़ुदा की मदद से किसी सख़्त काम में न थे। दिन भर काम कर के रात को बारिग [बैरक] में जा कर सो रहते।

जब हम जेल में गए तो क़ैदियों को रोटी और दाल और हफ़्ते में दो या तीन दिन तरकारी, तेल से बघारी हुई [छोंक लगी], मिला करती थी और गोश्त या दूध-दही कभी किसी क़ैदी ने सरकार की सत्ता की शुरुआत से ख़्वाब में न देखी होगी। अब ख़ुदा की मदद का कारख़ाना सुनिए। हमारा जेल में दाख़िल होना था कि बहुक्म इंस्पेक्टर-जनरल मजिस पंजाब कुल क़ैदियान पंजाब को उम्दा गोश्त और घी और दही मिलने लगी। प्यालों पर प्याले इस गोश्त के, हमारे वास्ते लाए जाते और सब क़ैदी हम को दुआ दिया करते कि तुम्हारे सबब से हम ने भी ये ने'मतें खाईं। मगर हालत ये कि जब तक हम जेलहा-ए-पंजाब में रहे, तब तक ये चीज़ें सब जेलख़ानों में बराबर मिलती रहीं। हमारा काले पानी को रवाना होना था कि फिर वो चीज़ें यकक़लम [बिल्कुल] बन्द हो गईं बल्कि बजाए गेहूँ की रोटी के, हमारे जाने के बाद ज्वार-बाजरे की रोटियाँ बेचारे क़ैदियों को मिलने लगीं।

हम जेल अम्बाला में थे कि वबाई बुख़ार मय सरसाम [उन्माद, विक्षिप्तता] बड़े ज़ोर-शोर से क़ैदियों में फैला। कोई चौथाई क़ैदी उसी मर्ज़ से मर गए। ये हालत थी कि इधर बुख़ार आया, उधर सरसाम हुआ और चट से मर गया। महीने दो महीने की मियाद वाले क़ैदी भी

बहुत मर गए। जेल के बाहर ख़ेमे खड़े कर के क़ैदियों को वहाँ ले गए मगर हज़रत-ए-बुख़ार वहाँ भी साथ ही गए। ये ख़ाकसार भी उस वबा-ए-आम से न बचा और सख़्त बीमार हो कर शिफ़ाख़ाना [हस्पताल] जेल में दाख़िल हुआ।

डॉक्टर बट्सन साहब बहुत ध्यान और दिल से मेरा इलाज करते थे। लेकिन बुख़ार को ज़रा भी इफ़ाक़ा [कमी, स्वास्थ्य परिवर्तन] न हुआ। गो सरसाम की नौबत न पहुँची थी मगर मैं बेआब-ओ-दाना [बिना पानी और खाना] चंद रोज़ तक बेहोश पड़ा रहा। अंग्रेज़ी दवा ज़रा भी असर न करती थी। लाचार हो कर डॉक्टर साहब ने मुझ से फ़रमाया कि तुम अपने घर में बुख़ार के वास्ते क्या दवा खाते थे? मैंने कहा हिंदोस्तानी दवाएँ खाता था और ऐसे मर्ज़ में मैंने अंग्रेज़ी दवा कभी नहीं खाई, शायद इस सबब से उन का कुछ असर मुझ पर नहीं होता। तब उन्होंने फ़रमाया, उन दवाइयों का नाम तुम को मालूम है? मैंने कहा मुझ को मालूम है। तब उन्होंने कहा, अच्छा, वो दवाएँ एक काग़ज़ पर हम को लिख दो, हम बाज़ार से तुम्हारे वास्ते मंगवा देवेंगे।

तब मैंने मुरब्बा सेब व मुरब्बा बही व शरबत अनार व शरबत बनफ़्शा व नीलोफ़र व वरक़ नुक़रा [चांदी का वरक़] वग़ैरा उम्दा-उम्दा और मज़ेदार व मुक़व्वी [बलवर्द्धक] व मुफ़र्रेह [आनन्दित करने वाली] दवाइयाँ एक पुर्ज़ा काग़ज़ पर लिख दीं। उन्होंने उसी वक़त सब बाज़ार से मंगवा कर मेरे हवाले कर दीं। मारे बीमारी के ज़बान का मज़ा तो बिगड़ा हुआ था। मैंने मज़े से उन को एक के बाद एक, लगातार खाना शुरू किया। बुख़ार तो हरकत करने वाली क़िस्म का था, उन शरबतों के इस्तेमाल से दूसरे दिन दफ़ा हो गया और मुरब्बों और औराक़-ए-नुक़रा [चांदी के वरक़ों] से बदन और मेदे में ताक़त और क़ुव्वत भी आ गई। डॉक्टर साहब ने जब दूसरे दिन मुझ को तनदुरुस्त पाया तो बहुत ख़ुश हुए और क़ुव्वत के वास्ते शोरबा गोश्त और दूध मेरे वास्ते मुकर्रर कर दिया।

मुझ को इस मक़ाम पर इस दौलत-ए-दुनिया और हशम-ओ-जाह [शान और प्रतिष्ठा] के अस्थाईपन और पारे की तरह अस्थिर हालत और हरजाई का थोड़ा सा ज़िक्र करने का भी मौक़ा मिला है और उस की संक्षिप्त हालत इस तर्ज़ पर है कि बारह तारीख़ दिसम्बर को अपनी घर की तलाशी से थोड़ी देर पहले तक मैं हज़ारों रुपये की जायदाद मन्क़ूला ग़ैर मन्क़ूला [अचल और चल सम्पत्ति] पर, जैसे कि मकानात व दुकाकीन व ज़मीनों व कुँआ व बाग़ात वग़ैरा के क़ाबिज़ था। बीसों आदमी मेरी परवरिश में रहते थे। ऐसे बड़े शहर का नम्बरदार घोड़ी और गाड़ियों में सवार हुआ फिरता था। हर हर काम के मर्द औरत मेरे घर में नौकर-चाकर थे। या! उस के चंद घंटे पीछे जब बाद तलाशी मैं फ़रार हो गया वह सब शान-ओ-शौकत ख़ाक में मिल गया। बवजह मेरी फ़रार या ज़्यादा ग़ुस्से के, अंग्रेज़ों ने हुक्म

जारी होने से पहले आख़िर मुक़द्मे की मेरी कुल जायदाद कुर्क कर ली। दूसरे दिन ख़ुद मेरे अज़ीज़ों को कोई अपने बरामदे में भी खड़ा न होने देता था। एक ही रात में वह सब माल दूसरों का हो गया। मेरे वारिसों को इस क़द्र मौक़ा भी न मिला कि कोई जायदाद कुर्की से पहले अलहिदा कर लेवें और ज़ब्ती के हुक्म जारी होने के बाद जब मेरे भाई ने, जो आधे का वारिस था, अपने हिस्से का दावा किया, उस को भी सिर्फ़ एक कोठरी दे कर, कुल जायदाद अचल और चल ज़ब्त कर के नीलाम कर दी। मैंने दूरदर्शिता की नज़र से अपने हिस्से की कुल जायदाद को अपनी बीवी के महर [विवाह के समय बीवी को दिए गए धन या उस के वचन] में रेहन कर के एक बेनामा शरअ या इस्लामी क़ानून के अनुसार उस के नाम लिख दिया था। वह बेनामा भी पेश हुआ मगर मारे ग़ुस्से और धर्म-आधारित पक्षपात के, किसी ने भी न सुना और मेरी बीवी को दो नाबालिग़, दूध पीते बच्चों समेत, हाथ पकड़ कर घर से निकाल दिया।

इंद्रियों सम्बन्धी एक कमज़ोरी

फाँसी का हुक्म बदले जाने के बाद, हम सितम्बर 1864 से फ़रवरी 1865 तक जेल अम्बाला में रहे। बहुत बार मुहम्मद शफ़ी के घर से बहुत सा खाना उम्दा-उम्दा [बढ़िया] क़िस्म का हमारे वास्ते आया करता था। और हम लोग उस को जेल में एक ऐसी ने'मत जिस का इंतज़ार न हो, समझ कर बड़े मज़े से खाया करते और शुक्र-ए-इलाही भी लाते। यहाँ तक अपनी तारीफ़ आप लिख कर मेरा नफ़्स [वुजूद, आत्मा] बहुत फूल गया है और अकसर जगहों पर अपनी तारीफ़ में बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बात करना चाहता है। इस वास्ते यहाँ उस के दो ऐब [दोष, ख़राबियाँ] भी लिख दूँ ताकि इस मूज़ी [दुष्ट] ख़ुदपसंद को ज़रा बेइज़्ज़ती महसूस हो और फिर मुझ को अतिरंजना करने की लालच न दे। और वो यह है कि एक दिन रात को जब हम एक तालाबंद बारक में सोते थे, एक सिपाही मुहम्मद शफ़ी के घर से पुलाव ले कर आया। एक जंगले के राह से वो पुलाव लेने को मैं गया। पुलाव लेते वक़्त मेरे इस नफ़्स [इंद्रीय प्रवृत्ति, कामना] से न रहा गया। एक बड़ी सी बोटी पुलाव की उठा कर मुँह में डाल ली और थोड़ा सा चबा कर झटपट उस को निगल लेना चाहा। वह चुराया हुआ माल हल्क़ [गले] में कैसे उतरे? वो हल्क़ में जा कर अड़ गई। न नीचे जाती थी न ऊपर आती थी। मेरा दम बन्द हो गया। मैं लड़खड़ा कर गिर पडा। वह नफ़्स [कामना] का ऐब हमारे सब साथियों पर ज़ाहिर हो गया। जब मेरा गला मला गया तो वो बोटी बजिंस बाहर निकल आयी। मैंने अपनी जान बरी और संदिग्ध माल हल्क़ से नीचे न जाने पर शुक्र-ए-इलाही किया। गो मुहम्मद शफ़ी से हमारा मामला एक था और उस की फ़ौरन इजाज़त भी हर तरह से हम को हासिल थी मगर तो भी यह हरकत नीच और निहायत भद्दी थी। मगर

हम्द [प्रशंसा] है अल्लाह का कि उस ने दुष्ट आत्मा को भी वो बेइज़्ज़ती महसूस करवाई कि अब तक उस को याद है और मुझ को उस संदिग्ध या चोरी माल के खाने से भी महफ़ूज़ [सुरक्षित] रखा।

एक इस से बढ़ कर अपने नफ़्स [कामना] की शरारत का हाल और सुनाता हूँ। एक दस रुपये का नोट जेल अम्बाला में बज़रिये डाक मुंशी अब्दुल ग़फ़ूर हमारे एक साथी के घर से मेरे पास आया था। उस वक़्त मेरे भाई को कुछ रुपये की ज़रूरत थी। मैंने मुंशी अब्दुल ग़फ़ूर से उस के आने की कुछ इतिलाअ [सूचना] नहीं की और बाहर से बाहर अपने भाई को वो नोट दिला दिया। जब मुंशी अब्दुल ग़फ़ूर को इस की इतिलाअ हुई तो उन्होंने मेरी कुछ शिकायत न की क्योंकि वो मेरे घर में बरसों तक रहे थे और मुझ को अपना बुज़ुर्ग जानते थे और उसी भरोसे पर मेरे नफ़्स [आत्मा] ने ये जुर्रत भी की थी। फिर भी दूसरे लोगों ने मुझ पर बहुत ताने दिये, लानत मलामत की, मगर मैं क्या करूँ? मेरे में उस वक़्त इस क़द्र ताक़त न थी कि दस रुपये उन को फिर दे दूँ लेकिन बाद पहुँचने पोर्ट ब्लेयर के, जब मेरे हाथ में पहले रुपया आया तो मैंने वो दस रुपये बज़रिया नोट उन को जेल लाहौर में भेज दिये। और अब बाद इज़हार इन हर दो ऐब अपने नफ़्स के, अल्लाह रब-उल-इज़्ज़त से उम्मीद करता हूँ कि मुझ को मुआफ़ फ़रमावे और क़यामत के दिन में नेकों के सामने मुझे ज़लील न करे।

झूठे गवाह बनने के लिए दिए गए लालच

जिस ज़माने में हमारा अपील चीफ़ कोर्ट पंजाब में दायर था, उस वक़्त हमारे वकील प्लोडन साहब ने हम को ये ख़बर दी थी कि अंग्रेज़ों का यह इरादा है कि अगर अपील में हम लोग चीफ़ कोर्ट पंजाब से रिहा हो जावें तो ख़ैर है वरना बाद नामंज़ूरी अपील के ये लोग मौलवी अहमदुल्लह साहब के ऊपर सब में से हम ग्यारह सज़ायाफ्ता व्यक्तियों के झूठे गवाह सिखला-पढ़ा कर बनाने शुरू हुए। मीर मुजीबुद्दीन तहसीलदार जो रिश्वत लेने के किसी क़ुसूर के जुर्म में जेल अम्बाला में क़ैद था और ऊपरी तौर पर हम लोगों से बड़े अख़लाक़ [शिष्टाचार] से पेश आता था, उस को अंग्रेज़ों ने वादा दिया कि अगर तुम बहका-सिखला कर इन में से किसी आदमी को मौलवी अहमदुल्लह साहब के ऊपर गवाह बना दो तो तुम को रिहा कर के फिर तहसीलदार कर देवेंगे। चुनांचे अपनी दुनयवी भलाई की उम्मीद पर उस ने अपनी काररवाही शुरू की। मगर जब हमारे कान में उस के बहकाने और गवाह बनाने की ख़बर पहुँच जाती तो हम अपने साथियों को ये कह कर, के भाइयों, हमारी दुनिया तो ख़राब हो गई है, अब सिर्फ़ दीन बाक़ी रह गया है, झूठे गवाह बन कर उस को न बिगाड़ो, कहीं तुम्हारी वो मिस्ल [उदाहरण] न हो जावे, दोनों तरफ़ से गए पांडे, इधर हलुवा न उधर मांडे। जिस क़द्र दिन भर वो शैतान गवाह बनाने की लालच देता, उस का असर

हमारी थोड़ी देर की नसीहत से फिर रफ़ा हो जाता। इस वास्ते उस ने साहब लोगों से कहा कि जब तक ये शख़्स (यानी यह लेखक) और मौलवी यहया अली साहब इस जेल में हैं, तब तक कोई गवाह नहीं हो सकता। इस वास्ते 22 फ़रवरी सन 65 को मुझ को और मौलवी साहब मौसूफ़ [उल्लिखित] और मियां अब्दुल ग़फ़्फ़ार को सेंट्रल जेल लाहौर को रवाना कर दिया और मुहम्मद शफ़ी व अब्दुल करीम व इलाही बख़्श व मुंशी अब्दुल ग़फ़ूर वग़ैरा को जेल अम्बाला में रख लिया।

फिर हमारा उस जेल से रवाना होना था कि मुहम्मद शफ़ी व अब्दुल करीम वग़ैरा गवाह सरकारी हो कर पटना को रवाना हो गए और उन की शहादत [गवाही] पर औलिया-ए-वक़्त शमसुलइस्लाम मौलवी अहमदुल्लह साहब बमाह मई सन 65 जायदाद ज़ब्त होने समेत अण्डमान में आजीवन कारावास की सज़ा हो कर हम से पहले जून महीने में दाख़िल अण्डमान हो गए और फिर 1871 तक जो मुक़द्दमे वहाबियों की गिरफ़्तारी, मिसाल के तौर पर मुक़द्दमा अमीर ख़ान साहब सौदागर चर्म व तबारक अली साहब व मौलवी अमीरुद्दीन साहब साकिन [निवासी] पंबा व इब्राहीम मंडल निवासी इस्लामपुर होते भी रहे। मामूली गवाह या गोइंदा [वक्ता, बोलने वाले], सरकार की झूठी गवाही देने को बुलाए जाते थे और मैंने ख़ुद उन में से एक गवाह की ज़बानी सुना है कि जब कभी गवाही ख़िलाफ़ देने से हम ने इनकार भी किया तो हम को ये कहा गया कि तुम लोग शर्तिया तौर पर सिर्फ़ इसी गवाही देने के वास्ते बतौर गोइंदा [वक्ता] रिहा किये गए हो। अगर तुम गवाही न दोगे तो फिर तुम को आजीवन कारावासी कर के पहले ही वारंट पर काले पानी को भेज दिया जाएगा।

अम्बाला जेल से लाहौर जेल भेजा जाना

जब मैं अम्बाला जेल से लाहौर जेल जाने को तैयार हुआ तो मेरी बीवी बच्चे भी मेरी मुलाक़ात को जेल पर आए थे। जिस दिन मेरी मुलाक़ात उन लोगों से हुई, माह रमज़ान था और मैं रोज़े से था। जेल के बाहर एक कोठरी में बहुत देर तक मेरी उन की बातचीत रही। मेरा गेरुआ लिबास और कम्बल का कुर्ता और पाँव में बेड़ी देख कर मेरे रिश्तेदार बहुत हैरान और ग़मगीन हुए मगर मैंने उन की बहुत तसल्ली की और ईमान और सब्र का मज़्मून [विषय] उन को समझाया। उस दिन कोई सवा बरस के बाद मैंने अपने बेटे मुहम्मद सादिक़ को भी देखा था। ऐसा बढ़ गया था कि मैंने मुश्किल से उस को पहचाना। ये गोया उस से मेरी आख़िरी मुलाक़ात थी, फिर दोबारा मैंने उस को इस दुनिया में नहीं देखा।

जेल लाहौर के लिए रवाना होना

22 फ़रवरी सन 1865 ईसवी को हम जेल लाहौर को रवाना हुए। गेरुआ लिबास, जोगियाना सूरत, कम्बल ओढ़े हुए, बेड़ी-हथकड़ी के ज़ेवर से आरास्ता-पैरास्ता [सुसज्जित] हम मंज़िल दर मंज़िल कूच दर कूच चले जाते थे। दो-एक गाड़ियाँ भी हमारे साथ थीं। बक़द्र तीस-चालीस क़ैदियों के हम जेल अम्बाला से रवाना हुए थे। सब पापयादा [पैदल] चलते थे। जब कोई थक जाता तो उस को गाड़ी पर भी सवार कर लेते थे वरना पैदल लोहे की पाज़ेब को छनछनाते चले जाते थे। ख़ैर, सवा बरस के बाद जो हम ने बाहर की हवा खाई और रास्ते में जो चाहते सो ख़रीद कर खाते और मौलवी यहया अली साहब के साथ हरदम साथ उठना-बैठना, इस सबब से हम को तो उस सफ़र में दिन ईद और रात शब-बरात [मुसलमानों का एक बड़ा त्यौहार] हो गयी थी। सुन्दर संयोग से जिस दिन हम नया गेरुआ लिबास पहन कर पहली मंज़िल से रवाना हुए तो महाराजा महेंद्र सिंह वाली पटियाला की बारात बड़ी धूमधाम से उसी राह से ऐन हमारे आगे जनूब [दक्षिण] से शिमाल [उत्तर] को जाती थी। उस वक़्त सूरज निकलता था। फ़ज्र [सुबह] का सुहाना वक़्त, आख़ीर फ़रवरी के गुलाबी जाड़े थे। एक तरफ़ सूरज की किरणों में बारात की सोना-चांदी और ताश बादला [रेशमी कपड़ा] और हीरा मुरस्सा [जड़े हुए हीरों] की चमक, दूसरी तरफ़ हमारी बेड़ी-हथकड़ी के लोहे की दमक। उधर दुशालों और कमख़ाब [एक प्रकार का बहुमूल्य कपड़ा] व बानात [एक प्रकार का ऊनी कपड़ा] का रंग, इधर हमारे जोगियाना लिबास और कम्बलों की स्याही सफ़ेदी का ढंग, उधर हाथी-घोड़ों की हुंकार, इधर हमारी बेड़ियों और हथकड़ियों की झंकार एक दूसरे के मुक़ाबिल इस नश्वर संसार की इज़्ज़त व ज़िल्लत और कमीबेशी रुतबे का फ़र्क़ अजब ख़ूबी से दिखला रही थी। मगर अफ़सोस कि ये राजा, शायद जिस ने हम को उस वक़्त बड़ी अपमान की निगाह से देखा होगा, मेरी वापसी हिन्द से बहुत बरस पहले अमरत्व की दुनिया का राही हुआ जहाँ अमीर फ़क़ीर दोनों ख़ाली हाथ जैसे आये थे, वैसे ही हाज़िर होते हैं। और उस ने इस दुलहन रूपी संसार से, जिस के वास्ते इस क़द्र धूमधाम थी, बहुत ही थोड़ा फ़ायदा उठाया। *कुल मताअ'-ए-उल दुनिया क़लीलम* [कुल दुनिया की पूँजी या सरमाया बहुत थोड़ा है], उस पर ख़ूब सादिक़ [सच] हुआ। हम जो एक लम्बे अरसे के बाद जेल की तंग तारीक [अंधकारमय] कोठरियों से बाहर मैदान में पहुँचे तो हम को भी महाराजा पटियाला के बारातियों की ख़ुशी से कम ख़ुशी न थी। हम हर रंग की तरह से उड़े चले जाते थे। जिन जिन क़ैदियों के पास कुछ नक़्द था, उस का जो कुछ चाहते, राह में ख़रीद कर खाते और ख़ुशी मनाते। **बवाना, फ़िलौर, जलंधर, अमृतसर होते हुए** आख़िर मंज़िल पर लाहौर में शालामार बाग़ के सामने हर किसी ने अपना-अपना

मन भर कर जो चाहा सो खा लिया क्योंकि जेल में जा कर तो सिवाय मामूली खाने के, और चीज़ें मिलनी मुहाल, बल्कि जुर्म हैं।

क़रीब 3 बजे शाम के हम लोग **सेंट्रल जेल लाहौर के दरवाज़े पर पहुँचे** और हमारे चालान [मजिस्ट्रेट के पास भेजे गए अभियुक्तों का दल] के कुल क़ैदी एक क़तार कर के दरवाज़ा जेल पर बिठला दिए गए। अव्वल एक कश्मीरी हिंदू दारोग़ा आया। उस ने पहले हमारे मुक़द्दमा वालों को पूरे ध्यान से देखा और किसी क़द्र अफ़सोस भी किया। उस के बाद डॉक्टर ग्रे साहब सुप्रिन्टेंडेंट जेल उपस्थित हुए। उन्होंने सब से अव्वल हम लोगों का मुलाहज़ा [निरीक्षण] किया और बड़े ग़ुस्से से हुक्म दिया कि एक एक अड़ा डण्डा भी इन लोगों के पाँव में डाल दो, चुनांचे इस हुक्म की पालना में लुहार लोहे के डण्डे ले कर हाज़िर हो गए और हमारे दोनों पाँवों के दोनों कड़ों के दरम्यान से एक एक अड़ा डण्डा जो एक फ़ुट (5 गिरह) से ज़्यादा लम्बा न था, डाल दिया गया। ये हुक्म धर्म-आधारित विद्वेष के तहत सिर्फ़ हम ही लोगों के वास्ते था और तमाम जेल भर में हम ने किसी क़ैदी के पाँव में ये डण्डा नहीं देखा। चलना-फिरना उठना-बैठना निहायत मुश्किल हो गया और रात को पाँव पसार कर सोना भी मुहाल था। उस जेल के बीच में एक बुर्ज और उस के चौगिर्द आठ अलहिदा अलहिदा बैरक समेत सहन और कारख़ाना मशक़्क़त [श्रम] के बने हुए थे। साहब मौसूफ़ [उक्त, उल्लिखित] ने हुक्म दिया के इस मुक़द्दमे के जितने क़ैदी हैं, हर एक को अलहिदा अलहिदा बारकों या नम्बरों में रखो ताकि एक दूसरे से मिलने न पावें। अपने दोस्तों से जुदा होना उस लोहे के डण्डे से भी बढ़ कर हम पर कठिन हुआ।

मुझ को नम्बर अव्वल में, जो सब से ज़्यादा सख़्त था, ले गए लेकिन क़रीब छः बजे शाम के उस सुप्रिन्टेंडेंट के दिल में ख़याल आया या कहीं से कोई ख़बर या हुक्म पहुँचा कि यह क़ैदी जेल अम्बाला बीमारी वाली जेल से आये हैं, इन को दूसरे सब क़ैदियों से अलहिदा रखना चाहिये ताकि उन की बीमारी इस जेल में भी न फैल जाए। वही पहला नम्बर जहाँ मैं बन्द था, उन के अलहिदा रखने के वास्ते तज्वीज़ [फ़ैसला] हो कर हमारे कुल साथी बल्कि सारा चालान [मजिस्ट्रेट के पास भेजे गए अभियुक्तों का दल] उसी बारक में जमा हो गया और हम आपस में मिल कर बहुत ख़ुश हुए और अल्लाह की इस इच्छा और गुप्त आग्रह पर शुक्र करते हुए सर झुकाया। उस नम्बर का जमादार एक मुसलमान होने की वजह से, हम को कुछ मशक़्क़त [मेहनत] भी न करनी पड़ी और एक हफ़्ते के बाद उस सुप्रिन्डेंट ने ख़ुद मुझ को उसी नम्बर का मुंशी मुक़र्रर कर दिया मगर वह डण्डा जो शायद किसी बड़े हाकिम के हुक्म से था, बदस्तूर ज़ेब-ए-पा [पाँवों की शोभा बढ़ाता] रहा जिस के सबब से जब हर फ़ज्र [सुबह] को सुप्रिन्टेंडेंट वहाँ तशरीफ़ लाते तो मुझ को हर क़ैदी की मशक़्क़त

का हिसाब दिखलाने के वास्ते हिरण की तरह उछल-उछल कर उन के साथ रहना पड़ता था।

एक दिन मैं अपने नम्बर में इतवार के दिन अपने बिस्तर पर पालथी मार कर बैठा हुआ था कि अचानक साहब सुप्रिंडेंट हमारे नम्बर में पहुँचे और कुल क़ैदियान नम्बर की तलाशी करने का हुक्म जारी किया। एक के बाद एक मेरे बिस्तर की भी तलाशी हुई जिस में कुछ थोड़ा पिसा हुआ नमक मेरे बिस्तर से भी बरामद हो गया। ऐसे क़ुसूर पर वहाँ बैंत की सज़ा होती है। अब मैं हैरान था कि क्या जवाब दूँ। इस में सन्दल नाम एक मुसलमान क़ैदी जो जेल अम्बाला से मेरे साथ आया था और मेरी ख़िदमत किया करता था, बोल उठा कि ये बिस्तर और नमक मेरा है, इस का नहीं है। साहब ने पूछा, ये कैसे? उस ने कहा कि हुज़ूर के तशरीफ़ लाने से पहले मैं और ये दोनों पेशाब करने को पाख़ाना में गये थे। इस बीच में हुज़ूर आ गए, हम जल्दी से जो दौड़ कर आये, उस घबराहट में ये मेरे बिस्तर पर और मैं इन के बिस्तर पर बैठ गया। साहब सुप्रिंडेंट इस बयान को सुन कर बहुत हँसा और हम दोनों को नम्बर से बाहर जहाँ बैंत लगा करते थे, ले गया। दूसरे क़ैदियों को, जिन के बिस्तरों से कुछ-कुछ निकला था, बैंत लगने शुरू हुए। आख़िर में फिर उस ने हमारी तरफ़ ध्यान दे कर सन्दल से पूछा के ये बात सच है? उस ने कहा हाँ, नमक और बिस्तरा तो मेरा है, आगे आप को इख़्तियार है। ये जवाब सुन कर उस ने हम दोनों को बरी कर दिया और कुछ सज़ा न दी और सन्दल से कहा के अच्छा, तुम मौलवी को बचाना चाहता है? हम ने तुम को भी माफ़ किया। जाओ, आगे को होशियार रहो।

मुल्तान – और आगे कराची - को रवाना करने का बन्दोबस्त होना

आख़िर अक्तूबर सन 65 में एक बड़ा भारी चालान क़ैदियों का तैयार हो कर मुल्तान को रवाना करने का बन्दोबस्त हुआ। एक-एक हथकड़ी दो-दो आदमियों के हाथों में लगाई गई। मेरे साथी ने मुझ से ये रिआयत की कि मेरा बायां और अपना दाहिना हाथ हथकड़ी में डलवाया। हमारे मुक़द्दमे के सिर्फ़ तीन आदमी यानी मैं और मौलवी यहया अली साहब और मियाँ अब्दुल ग़फ़्फ़ार मुल्तान को रवाना हुए।

मौलवी अब्दुल रहीम साहब को जो हमारे साथ अम्बाला से रवाना नहीं किया गया था, ग़ालिबन [शायद] वो दूसरी ग़रज़ के वास्ते वहाँ रखे गए थे और जिसे मैंने ऊपर बयान किया, कि बाद नामंज़ूरी हमारी अपील के, दो कारवाइयाँ जेल अम्बाला में शुरू हुई थीं। एक कारवाई का बयान तो मैंने कर दिया के जिस से अब्दुल करीम और मुंशी अब्दुल ग़फ़ूर व मुहम्मद शफ़ी व हुसैनी साकिन [निवासी] पटना व इलाही बख़्श सौदागर ने इस जेल दुनियवी से तो रिहाई पाई मगर उस आख़री जेल यानी परलोक का कि जिस के एकदम

सर्द से छः महीने सर्दी और एकदम गर्म से छः महीने गर्मी रहती है, कुछ ख़याल न किया और दूसरी काररवाई ये थी के क़ाफ़िले वालों को ये लालच दी जावे कि वो हिन्दुस्तान को चले आवें। उन को इस मुल्क में जागीर वग़ैरा सब कुछ दिया जावेगा और सब हमारे क़ैदी भी छोड़ दिए जावेंगे मगर इस आख़री काररवाई में नाकामयाबी रही। वो दुनिया को त्याग देने वाले फ़क़ीर जो इस अमलदारी [राज्याधिकार] को मलगोबिस्तान [जंगल में या गुफ़ा में या पहाड़ पर एकांतवासी होने की जगह] समझ कर महाबन के पहाड़ में गोशागुज़ीन [एकांतवासी] हुए हैं, भला दुनिया के लालच पर या हमारी रिहाई की ख़ातिर कैसे अपना शांत और सुरक्षित कोना छोड़ कर इस मलगोबिस्तान में चले आते। जब ये काररवाई न चली तो हमारे दो बरस बाद मौलवी अब्दुल रहीम साहब को भी काले पानी को भेज दिया।

जिस दिन हम लाहौर से रवाना हुए, रेल की इस्टेशन तक सर पर बिस्तरा एक हाथ से थांबे हुए और दूसरे हाथ में हथकड़ी की गलजोट [क़ैदी का एक हाथ दूसरे क़ैदी के हाथ के साथ हथकड़ी से बांधे हुए], उस पर सिपाहियों की बार-बार जल्दी चलो, जल्दी चलो, रेल खुल जावेगी। ख़ैर, बहरसूरत हम रेल तक पहुँचे। वहाँ जा कर रेल की कोठरियों में हम को बन्द कर के क़ुफ़्ल [ताला] लगा दिया और लाहौर से मुल्तान तक राह में कहीं नहीं खोला, जानवरों या माल की तरह गाड़ियों में भर दिया था। कोई आठ बजे रात के बाद हम मुल्तान पहुँचे। वहाँ भी अंधेरी रात में सर पर बिस्तरा रखे हुए कशाँ कशाँ [ज़बरदस्ती, खींचते-खींचते] इस्टेशन से जेल तक पहुँचे, जहाँ जानवरों की तरह बिना पानी व खाना, रात को बन्द कर दिए गए। दो दिन हम उस जेल में रहे। शहर किधर बसता है, बाज़ार कहाँ है, वो हम ने आँख से नहीं देखा।

दो रोज़ बाद वहाँ से एक पतन या घाट दरिया-ए-संदा [संदा नदी, सिंधु] पर, जो मुल्तान से क़रीब पाँच कोस के है, हम को ले जा कर अगनबोट [मोटरबोट] पर सवार करा दिया। सवार होने के बाद हम सब को क़तार क़तार कर के उस पर टहला दिया और सिवाय बेड़ी और हथकड़ी और डण्डे के, जो पहले से तन की शोभा बढ़ा रहे थे, यहाँ एक बड़ी मोटी ज़ंज़ीर लोहे की भी हमारे बेड़ियों के बीच में पहनाई गई कि जिस से अपनी-अपनी जगह से कोई हिल नहीं सकता था। जब तक हम जहाज़ पर रहे, अपनी-अपनी जगहों शुरू पर बैठे हुए पाख़ाना पेशाब करते रहे। इस वक़्त क़रीब आधा-आधा मन लोहा हमारे जिस्म पर था। बावजूद इस क़द्र पानी की बहुतायत के, कि दरिया-ए-संदा हमारे ज़ेर-ए-पा [पैरों तक] था, हम पड़े-पड़े तयय्युम से [बिना पानी के] नमाज़ पढ़ते थे। गो हम जकड़े हुए पड़े थे मगर जेल से निकल कर और दोस्तों का साथ और नदी के पानी के प्रवाह और आस-पास के जंगलों की हरियाली को देख कर बहुत बश्शाश [आनंदित] थे।

इस कैफ़ीयत [हालत] से हम पाँच-छः रोज़ बाद कोटली में पहुँच गए। सुक्कर, भक्कर और ठट्ठे का नामी क़िला भी हम को राह में संदा के किनारे पर मिला था। कोटली के सामने दूसरे किनारे संदा पर हैदराबाद संदा [हैदराबाद सिंध] की नामी बस्ती भी देखने में आई।

कोटली से उसी दिन रेल पर सवार हो कर हम कराची में पहुँच गए। इस मुल्क में बड़ी-बड़ी ऊंची टोपियाँ वाले और टोकरे सी बड़ी-बड़ी पगड़ियाँ वाले सिंधी हम ने देखे। शायद टोपियाँ वाले मुंशी और क्लार्क थे औऱ बड़ी पगड़ियाँ वाले हिन्दू महाजन। हिंदुस्तानी ज़बान और उर्दू-फ़ारसी का दफ़्तर मुलतान में ख़त्म हो गया। सिंध में सब सिंधी ज़बान और सिंधी दफ़्तर देखा गया। सिंधी इल्म [विद्या] के हुरूफ़ [अक्षर] तो फ़ारसी के हैं मगर ज़बान सिंधी होने के सबब एक लफ़्ज़ समझना भी दुश्वार [मुश्किल] है। अल्हमदोलिल्लाह [धन्य है ईश्वर] कि कराची की जेल में पहुँचने के साथ ही हमारी हथकड़ी और आड़े डण्डे से तो निजात हुई। सिर्फ़ लोहे की ज़ंजीर ज़ेब-ए-तन [तन की शोभा] रही। बमुक़ाबला दूसरे जेलख़ानों के जहाँ-जहाँ ये ख़ाकसार रहा, कराची के जेल को जेल क्या, मेहमानों के लिए एक बढ़िया सराय कहना चाहिये। वहाँ रात को क़ैदियों को बारक या कोठरियों में जानवरों की तरह बन्द नहीं करते। बंगलों की तरह से खुले हुए मकान, चटाइयों का फ़र्श बिछा हुआ क़ैदियों के वास्ते मौजूद है। रात को जहाँ फिरो, जहाँ चाहो सोओ, कोई एतराज़ नहीं। पहरे वाले सिर्फ़ जेल की फ़सील [चारदीवारी] पर फिरते हैं। रात को जेल के अन्दर मुहाफ़िज़ [रक्षक, निरीक्षक] या पहरेदार का नाम नहीं। दो बरस के बाद यहाँ रात को आसमान और सितारों की ज़ियारत हुई [दर्शन हुए]। जनाब बारी में सजदात शुक्र बजा लाए [ईश्वर के सम्मुख माथा टेक कर कृतज्ञता प्रकट की]। यहाँ क़ैदियों का खाना भी बनिस्बत और जेलख़ानों के निहायत उम्दा था। मगर पाख़ाना फिरने की बड़ी दिक़्क़त, क्योंकि पीपों को दो टुकड़े कर के मैदान में रखवा दिया है जिस के ऊपर बेढंगे रूप से चढ़ कर नंगे बदन सब के सामने क़ैदी पाख़ाना फिरते हैं।

एक हफ़्ते कराची में ठहर कर एक बादबानी जहाज़ पर जिस को बगला कहते हैं, हम सवार हुए। सब से पहले समंदर और जहाज़ों की ज़ियारत [दर्शन] हम ने कराची में की। ये जहाज़ बहुत छोटा था मगर क़ैदियों को बोरे में भरे माल की तरह नीचे की तह में ऊपर-नीचे कर के भर दिया था। क़ैदी कुचमुच एक दूसरे के ऊपर-नीचे पड़े थे और ये बैत पढ़ते थे - जाय तंगस्तो मरदुमान बिस्यार – *वक़्ना रब्बना अज़ाबन्नार* (यानी जगह तो तंग है और आदमी ज़्यादा)। जब लंगर उठा कर थोडी दूर समंदर में पहुँचे तो दरिया के तूफ़ान और लहरों से जहाज़ हिलने लगा और क़ैदियों को क़ै व मतली शुरू हुई। जगह की तंगी के सबब से एक दूसरे पर क़ै करता जाता था। इस जहाज़ पर कुछ मुसलमान ख़लासी [मज़दूर] थे

जिन्होंने हम को मौलवी समझ कर, जहाँ तक मान करते थे, ख़ुद खाने-पीने से बहुत आदर-सत्कार की।

बम्बई पहुँचना, बम्बई के नज़ारे और जेल

ख़ैर, दो-तीन रोज़ के बाद बमुश्किल तमाम हम दाख़िल बन्दरगाह बम्बई के हुए। वहाँ देखा तो कोसों तक हज़ारों जहाज़ खड़े थे। उस को एक जहाज़ों का जंगल कहा चाहिए। बम्बई में क़िले के नीचे डोंगियों में बिठला कर हम को जहाज़ से उतारा और वहाँ से बज़रिया सवारी रेल जेलख़ाना थाना को, जो बम्बई से दस-बारह मील है, हम को ले गए। बम्बई में पारसी मर्द-औरतों को हम ने फिरते हुए देखा। इस क़ौम के लोग बहुत ख़ूबसूरत गोरा रंग होते हैं और मालदार भी हैं। ये लोग आतिशपरस्त ज़र्दुश्त [अग्निपूजक ईरानी महात्मा ज़र्दुश्त] की उम्मत [समुदाय] से हैं। दूसरे ख़लीफ़ा की चढ़ाई के वक़्त ईरान से भाग कर इस हिस्सा-ए-हिंदुस्तान भारत के भाग में आबाद हो गए। बम्बई की इमारतें, जहाँ तक हम को देखने का मौक़ा मिला, निहायत ऊंची और दीवारों में बेशुमार खिड़कियाँ बनी हुई थीं। बम्बई शहर भी एक टापू है। एक बंधा बांध कर उस को बर्र-ए-आज़म हिन्द [भारतीय उपमहाद्वीप] से मिला दिया है। बम्बई और थाना के बीच में भी समंदर बहता है और उस के पानी को खेत और क्यारियों में रोक देते हैं। धूप की तपिश से वो पानी ख़ुश्क हो कर बढ़िया नमक ख़ुद-ब-ख़ुद तैयार हो जाता है। हज़ारों मन नमक के अम्बार रेलवे सड़क के किनारे-किनारे लगे हुए थे। नारियल के दरख़्त और उस का ताज़ा फल भी हम ने पहले-पहल बम्बई में देखा। यहाँ की औरतें अपनी साड़ी को मर्दों की तरह, धोती के तौर पर पीछे की तरफ़ टांग लेती हैं। घुटने के ऊपर तक और उस का आस-पास खुला रहता है। यहाँ के हिन्दू की पगड़ियाँ भी बड़ी-बड़ी लम्बी, सर पर टोकरा सा रखा रहता है। इस मुल्क की ज़बान गुजराती या मरहटी है।

जब हम रेल से उतर कर थाना के बाज़ार को जेल की तरफ़ पैदल चले जाते थे तो हमारे साथी क़ैदियों ने चंद मिठाई वालों की दुकानों को लूट लिया और बेधड़क उस चोरी के माल को खाने लगे। बेचारे दुकानदार उन को क़ैदी समझ कर चुप हो रहे। बल्कि हम ने देखा कि कुछ दुकानदार अपनी मिठाई लुटवा कर बहुत ख़ुश हुए और क़ैदियों के मुँह में पड़ने को बड़ा पुन समझे।

चलते-चलते क़रीब शाम के, हम थाना के जेल के दरवाज़े पर पहुँचे। जेल क्या, एक मरहटों के वक़्त का बड़ा अटल और मज़बूत क़िला है जिस के चारों तरफ़ एक बड़ी गहरी पुख़्ता ख़न्दक़ [खाई] बनी है। जेल के अन्दर दाख़िल होने के साथ ही हमारी तलाशी शुरू हुई और हम सब की जूतियाँ उतरवा ली गयीं और फिर चलते वक़्त तक वापिस न मिलीं।

सुना है कि एक दफ़ा किसी दिलजले क़ैदी ने दारोग़ा-ए-जेल को जूतियों से मारा था। उस वक़्त से ये क़ानून यहाँ हो गया कि क़ैदी जेल में जूता न पहने और नंगे पाँव फिरा करे ताकि दोबारा ऐसी बेहूदा हरकत न करे। रात को दो-दो जवार की रोटियाँ थोहर की दाल दे कर अलहदा-अलहदा कर के कोठड़ियों में हम को बन्द कर दिया मगर ख़ुदा की मदद से दूसरे दिन से हमारे पंजाबी क़ैदियों को गेहूँ खाने वाले मुल्क के आदमी समझ कर गेहूँ की रोटियाँ मिलने लगीं और हमारे बाद से ये ख़ुसूसीयत [विशेषता] मजिस्ट्रेट के पास भेजे गए, पंजाब से आने वाले सब अभियुक्तों के वास्ते हमेशा के लिए तय हो गयी। सुबह को हमारे सब चालान को पत्थर तोड़ने की मशक़्क़त [श्रम] दी गई जिस को बमुश्किल तमाम [बहुत मुश्किल के साथ] एक-दो दिन हम ने किया। दो रोज़ बाद हमारे पहुँचने से वहाँ दरी बानी [दरी बनाने] का काम शुरू हो गया और हमारे चालान के पंजाबी क़ैदी उस के प्रबन्धकर्ता हुए। मगर उन्होंने मुझ को और मौलवी यहया अली साहब को दरियों का उस्ताद बयान कर के अपने साथ ले लिया जहाँ हमारा एक महीना बड़े आराम के साथ तय हुआ।

इस जेल और मुल्क में मरहटी [मराठी] ज़बान का दफ़्तर है। फ़ारसी-उर्दू पढ़ने वाले यहाँ भी बिना पढ़े-लिखों में शुमार होते हैं। अब कराची और थाना के दफ़्तरों का ये हाल देख कर हम को तो यक़ीन हो गया था कि हम अब बाक़ी तमाम उम्र अनपढ़ों में शुमार होंगे और क़लम पकड़ने की नौबत शायद ही आवे। वो उम्मीद जो हम को फ़न-ए-मुंशीगिरी से थी, क़त्अ हो [कट] गई। अब सिर्फ़ अल्लाह की मेहरबानी की उम्मीद बाक़ी रह गई। इस जेल का बड़ा जेलर या दरोग़ा तो एक ब्राह्मण बडा अहंकारी आदमी था मगर इब्राहीम नाम एक मुसलमान नायब दारोग़ा यथाशक्ति ख़ुद हमारी बहुत ख़ातिरदारी करता था।

अब एक महीना रहने के बाद यहाँ से भी हमारे चलने की तैयारी हुई। इस मुसलमान नायब दारोग़ा ने चलते वक़्त हमारी भारी बेड़ियाँ निकलवा कर बराए नाम [नाम मात्र को] हल्की-हल्की बेड़ियाँ डलवा दीं। हिन्द के जेलख़ानों में देसियों को, ख़ास तौर पर शरीफ़ों को, बड़ी मुश्किल है। न खाने-कपड़े का बंदोबस्त है, न पाख़ाने का। रात को हर मौसम में बारकों में जानवरों की तरह, बन्द कर देते हैं। बदमाशों को अलबत्ता आराम है। हमारे देसियों के रुतबों का कुछ लिहाज़ नहीं। काले-काले सब एक समझ कर राजा-नवाब-मेहतर-चमार, सब को एक ही लाठी से हांकते हैं मगर कोट-पतलून वालों की बड़ी इज़्ज़त है। युरोपियन व दोग़ले [एंग्लो-इण्डियन] दोनों, साहब लोगों की तरह, वहाँ भी चैन करते हैं।

बम्बई से रवानगी

वाक़िआ [घटना] - 8 दिसम्बर सन 65 जमना नाम के जहाज़/नाव में हम बम्बई से रवाना हो गए। ये जहाज़ विलायत इंग्लैंड का था। इस के कुल ख़लासी [मज़दूर] और

अफ़सर गोरे थे। हिन्दुस्तानी बात कोई न जानता था। मोतीलाल बाबू एक अंग्रेज़ीदाँ इस जहाज़ पर हमारे साथ था। उस की मार्फ़त [माध्यम] से जहाज़ वालों से हम कुछ बातचीत किया करते थे। मुझ को तो उस वक़्त एक अंग्रेज़ी बात भी मालूम न थी। जहाज़ पर दाल-भात और सूकी मछली मुसलमानों की ख़ुराक़ थी और हिन्दुओं को चना मिलता था। हमारे साथी पंजाबियों को, जो हमेशा रोटी खाते हैं, महीना भर दो वक़्त चावल खाने से बड़ी तकलीफ़ हुई। जब जहाज़ समंदर में पहुँचा, तूफ़ान और तलातुम से बहुत हिलता था। अकसर आदमी क़ै-मतली से बीमार हो गए। एक पंजाबी क़ैदी, मियादी सात साल, जिस के सिर्फ़ पाँच बरस उस वक़्त बाक़ी रह गए थे, बीमार हो कर जहाज़ पर मर गया। हम लोगों ने धार्मिक क़ानून के अनुकूल नियम के मुताबिक़, उस को ग़ुस्ल और कफ़न [स्नान करवा कर और मृतावरण वस्त्र] दे कर और जनाज़े की नमाज़ पढ़ कर उस की लाश के साथ बहुत से पत्थर बांध कर समंदर में छोड़ दिया। हमारे मुहाफ़िज़ [रक्षक, निरीक्षक] मरीन पल्टन के सिपाही, जो बम्बई से साथ आए थे, हम लोगों पर बहुत मेहरबानी किया करते थे। जब सैलून [सीलोन] या लंका की बराबर हमारा जहाज़ पहुँचा तो समंदर में बहुत ऊँची तरंगें और तूफ़ान मालूम हुआ। वो हज़ारों मन का जहाज़ गेंद की तरह पानी पर उछलता था। कभी समंदर का पानी पहाड़ की तरह, एक तरफ़ से आता और कभी जहाज़ नैज़ों [भालों] नीचे पानी में चला जाता।

पोर्ट ब्लेयर अण्डमान पहुँचना

34 रोज़ के सफ़र दरयाई [दरिया/नदी के सफ़र] के बाद 11 जनवरी सन 1866 ईसवी को हमारा जहाज़ दोपहर से पहले पोर्ट ब्लेयर अण्डमान में पहुँचा। अम्बाला से चल कर ग्यारह महीने के बाद हम दाख़िल अण्डमान हुए। दूर से समंदर किनारे के काले-काले पत्थर ऐसे मालूम होते थे कि गोया भैंसों के झुंड के झुंड पानी में फिर रहे हैं। लंगर डालने के थोड़ी देर बाद पोर्ट ब्लेयर बन्दरगाह के रक्षक एक कश्ती में सवार हो कर हमारे जहाज़ पर आए। उस के एक हिन्दुतानी मल्लाह [नौकाचालक] से मैंने पूछा कि यहाँ कुछ मुंशी-मुहर्रिरों [मुंशी-क्लर्कों/लिखने वालों] की भी क़द्र है और दफ़्तर किस ज़ुबान में है? वो शख़्स ढंग से मुझ को मुंशी मालूम कर के मेरी तसल्ली के वास्ते बात को बढ़ा-चढ़ा कर के बोला कि यहाँ के हाकिम और मालिक तो मुंशी ही हैं। वो जो चाहें सो करें। ख़ैर, उस नाउम्मीदी पर जो कराची और थाना में हुई थी, ये विवरण सुन कर किसी क़द्र तसल्ली हुई। फिर बड़े-बड़े बोट और कश्तियाँ किनारे से आईं और हम को सवार कर के रॉस नाम टापू [Ross Island] सद्रमक़ाम [मुख्यालय, राजधानी] अण्डमान में ले गए। जब हम किनारे के नज़दीक पहुँचे तो हम ने देखा कि बीसों मुंशी-मौलवी सफ़ेद और बहुत बढ़िया लिबास पहने हुए हमारे

इन्तज़ार में खड़े हैं। अभी हम कश्ती में सवार थे कि एक आदमी ने किनारे पर से बआवाज़ बलन्द [ऊँची आवाज़ में] पूछा कि फ़लाँ शख़्स [यानी ख़ुद लेखक] और मौलवी यहया अली साहब भी, इस जहाज़ में आये हैं? मैंने जवाब दिया, हाँ वो दोनों आये हैं। मेरा जवाब सुन कर वो लोग पानी में कूद पड़े और हम लोगों को हाथों हाथ कश्ती से नीचे उतार लिया। नीचे उतर कर हम को यहाँ मालूम हुआ कि मौलवी अहमदुल्लाह साहब हम से एक बरस बाद पटना में क़ैद हो कर 15 जून सन 65 को हम से छः महीने पहले पोर्ट ब्लेयर में पहुँच गए थे और एक दूसरे जहाज़ के क़ैदियों से, जो हम से पहले उसी जेल थाना से चल कर सिर्फ़ दो रोज़ पहले पहुँचे थे, हमारी आमद का हाल मालूम कर के मौलवी साहब हमारे मुन्तज़िर [इन्तज़ार में] थे। ये सब लोग उन्हीं के इशारे से हमारे लेने को घाट पर आए थे।

ख़ैर, हम लोग बोट से उतर कर उसी मजमे के साथ हाथ मिलाते और गले लगते हुए अपने चालान के क़ैदियों से जुदा हो कर मुंशी ग़ुलाम नबी साहब, मुहर्रिर [क्लर्क] मरीन डिपार्टमेन्ट के मकान पर पहुँचे। वहाँ मौलवी साहब और दूसरे अकसर मुअज़्ज़ज़ [प्रतिष्ठित] लोगों से मुलाक़ात हुई और उसी मकान में हम तीनों आदमी रहने लगे। हमारी बेड़ी कटवाई गई और उम्दा [बढ़िया] लिबास जो हमारे वास्ते पहले से तैयार कर के रखा था, हम को पहनाया गया और तमाम जलसे [सभा] के साथ हम ने दस्तरख़्वान [चादर जिस पर खाना रखा जाता है] पर बैठ कर खाना खाया और इस तारीख़ से तारीख़-रिहाई तक, हम ने फिर बारक या क़ैदियों का लिबास या खाना कभी नहीं देखा, मानो उसी तारीख़ से हम क़ैद से रिहा हो गए, गो [यद्यपि] अठारह बरस तक कर्मचारियों की तरह देश-निकाला में रहे। उसी शाम से घर-घर हमारी दावतें होने लगीं और वो-वो नफ़ीस और बढ़िया खाने हम को खिलाये गए कि हिन्द में मुझ को तो कभी ऐसे खाने नसीब भी न हुए थे। वो हमारा ख़याल के अब हम को सारी उम्र सिर्फ़ जेल का खाना खाना पड़ेगा, उस सर्वशक्तिमान ने बज़रिया इस बदले में मिलने वाली दूसरी अच्छी चीज़ के, हमारे दिल से ख़ात्मा करा दिया और अपनी शक्ति को दिखला दिया।

जब हम इस जज़ीरे [द्वीप, टापू] में पहुँचे, हज़ारों मर्द-औरत क़ैदियों को देखा, कि उन का माथा गोद कर पेशानी [मस्तक] पर उन का नाम और जुर्म और लफ़्ज़ आजीवन कारावासी लिखा हुआ है, कि वो लिखावट लिखे भाग्य की तरह तमाम उम्र नहीं मिटती। मगर ये ताईद-ए-इलाही [ईश्वरीय सहायता] सुनिए, कि हमारे पहुँचने से कुछ अरसा पहले वो हुक्म माथा गोदने का, सरकार के सम्पूर्ण राज्याधिकार से, हमेशा के वास्ते रद्द हो गया। इस सबब से आजीवन कारावासी के लिखित कलंक से भी हम महफ़ूज़ [सुरक्षित] रहे।

अण्डमान द्वीपसमूह : भौगोलिक अवस्था और पर्यावरण

जज़ाइर अण्डमान [अण्डमान द्वीपसमूह] बंगाल की खाड़ी के पूर्व को 93 देशांतर 93° 47' और अक्षांश 11°43' कलकत्ते से क़रीब 600 मील के वाक़े [स्थित] हैं। ये द्वीपों का समूह 1746 मील के घेरे में, जिस में क़रीब एक हज़ार जज़ीरे [द्वीप] शामिल हैं, बनाम अण्डमान मशहूर है। धरती की परतों के ज्ञान के अनुसंधानकर्ताओं का ये क़ौल [कथन] है कि ये द्वीपसमूह किसी ज़माने में बर्र-ए-आज़म एशिया [एशिया महाद्वीप] से मिले हुए थे। फिर ज़माने के फेर-फार और समंदर की मौजों से कटते-कटते अव्वल ये टुकड़ा एशिया महाद्वीप से अलहिदा हो गया था और फिर आख़िर को एक दूसरे से अलहिदा होते-होते हज़ारों छोटे-छोटे जज़ीरे [टापू] हो गए। यहाँ पाँच रोज़ में कलकत्ते से अगनबोट पहुँचता है और तीन रोज़ में रंगून से। मोलमीन [Moulmein] यहाँ से तीन सौ मील पूर्व व उत्तर में और सिंगापुर चार सौ मील कोण पूर्व व दक्षिण में और पनांग तीन सौ पचास मील पूर्व में और निकोबार या ननकोड़ी [Nancowry] अस्सी मील दक्षिण में और मद्रास आठ सौ मील पश्चिम में और लंका आठ सौ मील कोण पश्चिम व दक्षिण में वाक़े [स्थित] हैं।

ये टापू सब पहाड़ हैं। हमवार [समतल] ज़मीन बहुत कम है। यहाँ सब से ऊँचा पहाड़ माउंट हर्बट का है जो सतह समंदर से 1116 फ़ुट ऊँचा है। मीठे पानी का कोई नदी नाला यहाँ जारी नहीं है। बरसात के मौसम में बाज़ ऊँचे टीकरों और टीलों से पानी के झरने बहा करते हैं लेकिन ख़ुश्की के दिनों में बन्द हो जाते हैं। कुएँ और डिगियाँ यहाँ बहुतायत में हैं। यहाँ के जज़ाइर [टापुओं] में पोर्ट ब्लेयर के उत्तर को एक गंधक का पहाड़ है। उस से हर वक़्त आग के शोले निकला करते हैं। यहाँ के जंगल में सिवाय सुअर के और कोई चौपाया दरिंदा या चरिंदा [जानवर या पक्षी] नहीं है। लआब अबाबील [काली छोटी चिड़िया] यहाँ का एक बढ़िया तोहफ़ा है, कामशक्ति के वास्ते माही सक़न्क़ूर [एक सांड की तरह का मगर उस से छोटा जानवर] बढ़ कर समझा जाता है और रुपया तोला बिकता है। यहाँ के जंगलों में हज़ारों क़िस्म की उम्दा और पायदार लकड़ियाँ मौजूद हैं मगर हमारे मुल्क की लकड़ियों से सरासर ग़रहीन बेद [बेंत] भी यहाँ के जंगल में कई क़िस्म का है और उस की छड़ियाँ बतौर तोहफ़ा के मुल्क-मुल्क को जाती हैं। अक़ीक़-उल-हजर [एक बहुमूल्य पत्थर, कोरल] की छड़ियाँ मिस्ल काली नागनी के और घोंघे और शंख और हज़ारहा क़िस्म और रंग-बिरंग की कोरियाँ और तरह-ब-तरह की सिपियाँ यहाँ के समंदर से निकलती हैं और मुल्कों को बतौर तोहफ़े के जाते हैं। आम, इमली, जामुन, कटहल, बढ़हल, जायफ़ल, नारियल और पान वग़ैरा के दरख़्त जो गर्म मुल्क के जंगलों में होते हैं, सब ख़ुद से उगे हुए मौजूद हैं। अब जंगल के साफ़ हो जाने से पचास-साठ गाँव यहाँ आबाद हो गए और हर क़िस्म की

तरकारी और गर्म मुल्कों के फल और धान और मकई व अरहर, मूंग, माश व ऊख वग़ैरा बहुतायत में पैदा होते हैं मगर गेंहूँ चना वग़ैरा रबीअ और सर्द मुल्कों के आनाज यहाँ बिल्कुल पैदा नहीं होते। मगर सरकार गेंहूँ चना वग़ैरा कलकत्ता से ला कर बहिसाब 7 पाई फ़ी पौंड के बेचती थी। इस सबब से इस मुल्क में कभी क़हत [अकाल] नहीं पड़ता। हमेशा एक ही रेट से ग़ल्ला बिकता है।

आबोहवा इस जज़ीरे की अब तो ऐसी उम्दा और सेहतबख़्श है कि उस का सानी [मुक़ाबले का] पर्दा-ए-ज़मीन पर कोई मकान नहीं है। हैज़ा और चेचक और वबाई बुख़ार और आँखें दुखने के, संक्रामक रोग यहाँ बिल्कुल नहीं हैं। बीस बरस में हम ने कभी एक बीमार भी इन बीमारियों का नहीं सुना। भूमध्य रेखा के क़रीब होने के सबब से हमेशा बारह मास यहाँ दिन-रात बराबर हुआ करता है। बहुत ही थोड़ा फ़र्क़ पड़ता है। सर्दी-गर्मी यहाँ दोनों नहीं। हमेशा हमारे मुल्क के चैत बैसाख की कैफ़ीयत [हालत] रहती है। दिसम्बर-जनवरी में रात को एक चादर ओढ़ने की नौबत आती है। न गर्मी में गर्मी होती है, न लू यहाँ चलती है। जाड़े के कपड़ों का यहाँ बिल्कुल दस्तूर नहीं, न कोई रज़ाई बनाता है न दोलाई। न यहाँ रुई है, न धुनिया यहाँ। न कभी मौसम ख़ज़ाँ [पतझड़] है, न बहार। बारह महीने दरख़्त हरे-भरे रहते हैं। शायद यहाँ के मौसम में शांत, सुख-चैन से रहने वाले जंगलियों के, जो नंगे मादरज़ाद [जन्मजात] फिरते हैं, उस हकीम और अलीम [चिकित्सक और पीड़ा देने वाले] ने बनाई है। अगर सर्दी या गर्मी हो तो वह नंगे, ख़ुदा के बन्दे, फ़ौरन हलाक़ हो जावें। यहाँ बारिश की बहुत अधिकता है। मई से नवम्बर तक आठ महीने बराबर रात दिन बरसता रहता है। इसी सबब से यहाँ के मकानों की छत ढलवीं होती है। हमारे मुल्क की कच्ची और चपटी छत उस बारिश का एक दिन भी मुक़ाबला नहीं कर सकती। ओले वहाँ कभी नहीं पड़ते, न कभी आँधी चलती है।

जंगल निहायत घना और गुज़रने में कठिन है। दरख़्त इतने ऊँचे हैं कि गोया आसमान से बातें कर रहे हैं। जब किसी दरख़्त को काट कर गिराते हैं तो सैंकड़ों गज़ तक उस की डालियाँ और शाख़ों का असर पहुँचता है। यहाँ के साँप और बिच्छू में ज़हर नहीं लेकिन यहाँ कनखजूरे बहुत ज़हरीले होते हैं। यहाँ के जंगल में पुरातन से एक वहशी नंगी मादरज़ाद क़ौम रहती है। मर्द औरत कपड़ा कोई नहीं पहनते और न कपड़ा उन को मुयस्सर [प्राप्त, मिला हुआ] आता है। इन जंगलियों का सही हाल अब तक मालूम नहीं हुआ कि कब और किस मुल्क से आ कर यहाँ आबाद हुए और हमेशा से ऐसे ही वहशी हैं या कभी मुहज़्ज़ब [सभ्य] भी थे या नहीं। ये जंगली, जैसा कि मशहूर था, आदमख़ोर नहीं हैं, न उन के बदन पर बाल हैं, क़रीब सौ बरस के हुए।

इतिहास, मूल निवासी, उन के विश्वास और संस्कृति

सब से अव्वल लफ़्टन्ट ब्लेयर एक जहाज़ी सरदार ने यहाँ आ कर लंगर डाला था। इसी सबब से पोर्ट ब्लेयर इस का नाम हुआ। उन्हीं दिनों में, जिस को सौ बरस हुए, सरकार ने पहले भी यहाँ क़ैदियों को अण्डमान के टापुओं के खारे समुद्र में हमेशा का रखना तजवीज़ किया था, मगर प्रतिकूल पानी और हवा के सबब से सन 1796 में वह बस कर फिर उजड़ गया। सन 1857 की बग़ावत के बाद सरकार को फिर इस की जरूरत हुई और मार्च सन 58 से गोया दोबारा इस की आबादी शुरू हुई और पहले पहल बग़ावत के क़ैदी यहाँ ला कर रखे गए। शुरू आबादी में मुद्दत तक जंगली सख़्त विरोध में रहे। चुनाँचे दो बार उन्होंने डॉक्टर वाकर साहिब सुप्रिंटेंडेंट अव्वल के अहद [समयकाल] में बड़ी भारी जंगलियों की फ़ौज जमा कर के एक दफ़ा हदो [Haddo] पर, दूसरे बार अबरडीन [Aberdeen] पर हमला किया। आख़िर नरमी और सरकार की कूटनीति से वो फ़र्मांबरदार [आज्ञाकारी] हो गए और अब जंगल या बस्ती में जहाँ कहीं वे मिलते हैं तो निहायत ख़ातिरदारी से पेश आते हैं, गो शुरू आबादी में उन वहशियों ने बहुत ख़ून-ख़राबे किए थे।

ये लोग चार फ़ुट से पाँच फ़ुट चार इंच तक ऊँचे, हब्शियों की तरह सियाहफ़ाम [काले रंग के], गोल सर, आँखें उभरी हुई, सर पर भेड़ के से बाल, मगर निहायत मज़बूत और बलवान होते हैं। इन कुल जज़ाइर अण्डमान में इन की बारह ज़ातें [क़ौमें] हैं। एक ज़ात की ज़बान दूसरे क़ौम से बहुत कम मिलती है। ये जंगली इस बात के क़ायल हैं कि ख़ुदा आसमान में रहता है, वही पैदा करने वाला हर शै [वस्तु] का है और सब से बड़ा है। वह किसी से पैदा नहीं हुआ, वह हमेशा से है और हमेशा रहेगा, उस का महल बहुत उम्दा और नफ़ीस [बढ़िया], आसमान में है। उस को कोई देख नहीं सकता, उसी के घर से पानी बरसता है, बिजली का शोला और कड़क भी उसी के पास से आती है। मौत भी उसी के हुक्म से होती है, भलाई और रोज़ी भी वही देता है। श्रीमती चाना पालक नामक उस की एक बीवी भी है। उस की जोरू को भी फ़ना [मौत] नहीं और न वो किसी से पैदा हुई मगर उस का दर्जा ख़ुदा से कम है। उस का काम है कि समंदर में मछलियाँ पैदा करे। वही मछलियों को आसमान से गिराती है। ये लोग शैतान के भी क़ायल हैं और समझते हैं कि सब बुरे काम शैतान कराता है। मगर वो कहते हैं कि शैतान दो हैं, एक ज़मीन का शैतान, जिस का नाम इरम चूगला है। जब कोई ज़मीन पर अचानक आई मौत से मर जाता है तो यह समझते हैं कि इरम चूगला ने मार डाला है। एक समंदर का शैतान है जिस का नाम जोरोविंडा है। जब कोई आदमी डूब कर मर जाता है, कहते हैं कि उस को जोरोविंडा ने मार डाला है। ये लोग फ़रिश्तों के भी क़ायल हैं और समझते हैं कि वो मर्द-औरत दोनों जिंस [जाति] से हैं और

जंगल में रहते हैं और इन्सानों की हिफ़ाज़त [सुरक्षा] करते हैं। ये लोग भूत-प्रेत के भी क़ायल हैं मगर कहते हैं कि उन को कुछ इख़्तियार [अधिकार] नहीं है। यह लोग ख़ुदा या ग़ैर-ख़ुदा, किसी चीज़ की पूजा नहीं करते। ये लोग तूफ़ान-ए-नूह [पैग़म्बर नूह के समय में आए तूफ़ान] के भी क़ायल हैं और कहते हैं कि एक बार ज़मीन पर ऐसा तूफ़ान आया था कि सारी दुनिया डूब गई थी और जंगलियों के बुज़ुर्ग एक कश्ती बना कर उस पर सवार हो गए थे और तूफ़ान के समय में बहुत दिनों तक उस कश्ती पर सवार रहे। जब तूफ़ान रफ़ा हुआ तो वह कश्ती अण्डमान के कईयों में से किसी एक पहाड़ पर ठहरी थी।

ये लोग दो से ज़्यादा गिनती नहीं जानते। जब कोई चीज़ दो से ज़्यादा गिनते हैं तो उँगलियों पर इशारे करते हैं। ये लोग नंगे मादरज़ाद [जन्मजात] फिरते रहते हैं। सिर्फ़ औरतें एक छोटा सा पत्ता अपने गुप्तांग पर टागरे में अटका कर रख लेती हैं। मर्द-औरत अपने बदन को बोतल वग़ैरा के टुकड़ों से गोद कर भिड़ों का छत्ता या गुमटी का कपड़ा सा बना लेते हैं। मूछ-दाढ़ी या सर के बाल मर्द-औरत कोई नहीं रखता। उन को बोतल के टुकड़ों से तराश डालते हैं।

इन का ब्याह भी बहुत सीधे-सादे तौर पर होता है। बरवक़्त शादी के दूल्हा-दुल्हन दोनों के बदन को गेरू और छड़ी से लाल रंगते हैं और सारी क़ौम उस वक़्त जमा होती है। एक आदमी इस जल्से में बतौर क़ाज़ी के होता है। वही शख़्स दूल्हा को उठा कर दुल्हन के पास ले जाता है और दूल्हा के सामने बहुत से तीरो-ओ-कमान रख देता है और कहता है कि इन से शिकार कर के अपनी औरत की परवरिश करना और फिर वही आदमी बआवाज़ बलन्द [ऊँची आवाज़ में] लफ़्ज़ आब इक, यानी ले जाओ, ये तुम्हारी बीवी है, कहता है। इस कहने के बाद विवाह पक्का हो गया और फिर ता हयात [आजीवन] दोनों के न तलाक़ है, न जुदाई। शादी के बाद इन में पराई स्त्री से सम्बन्ध या व्यभिचार नहीं है। लड़का पैदा होने के वक़्त पर्दा करने की इन के यहाँ कुछ ज़रूरत नहीं है। मर्दों के सामने औरतें बच्चे जनती हैं, बाद पैदा हो जाने बच्चे के, एक औरत पत्तों से मक्खियाँ हांकती है और एक औरत नाल काट कर बच्चे को गोद में ले कर बैठती है। पहले दिन ग़ैर-औरत का दूध पिलाते हैं। दूसरे दिन बच्चे की माँ पिलाने लगती है और बाद रफ़ा हमल के [गर्भ दूर होने के बाद] जच्चा उसी दम चलने-फिरने लग जाती है। हरे पत्ते जंगल की खाती है। परहेज़ या अछवानी [प्रसूता स्त्रियों के लिए चाट कर खाने की एक दवा] का नाम नहीं। जब बच्चा थोड़ा सयाना होता है तो तीरकट्ठा उस का पहला खेल है।

इन लोगों का घर भी बहुत छोटा सा होता है। सिर्फ़ चार खम्भे खड़े कर के उस के ऊपर थोड़ी सी पत्ती डाल कर एक कुछ दिनों का आसरा बना लेते हैं। इन के घर में अगर जा कर

देखो तो सिवाए मियाँ-बीवी के और कुछ जायदाद और मल्कीयत नहीं रखते। तीरो कमान इन की असल जायदाद, बल्कि जान है। छोटी-छोटी डोंगियाँ (कश्ती) भी ये लोग बनाते हैं जिस पर सवार हो कर एक टापू से दूसरे टापू पर जाते हैं। अपने मुर्दों की खोपड़ियाँ भी ये लोग साथ-साथ लिए फिरते हैं। जब कोई मेहमान किसी दूसरे टापू से इन के यहाँ आता है तो पहले उन के घर से थोड़े फ़ासले पर बैठता है। घर वाले उस को वहीं खाना पहुँचाते हैं। खाना खाने के बाद वो जिस घर में चाहता है, जाता है। फिर सब उस से मिल कर रोते हैं।

ये लोग कुछ खेतीबाड़ी नहीं करते और न अनाज खाते हैं। इन का खाना मछली और समंदर के कीड़े-मकौड़े-केचुए वग़ैरा हैं। उन को पकड़ कर और आग पर आधा भून कर के बेनमक-मिर्च के खा जाते हैं। कुछ दरख़्तों की जड़ें और फलियाँ और जंगल के फूल और पत्ती और सूअर का गोश्त और शहद भी इन की ख़ुराक़ है। ग़ोताज़नी के ये लोग बचपन से ऐसे आदी होते हैं के शायद ही कोई दूसरी ग़ोताज़न क़ौम दुनिया की, इन से आगे निकल जावे। तीरंदाज़ भी ये लोग बला के हैं। सबदभेदी तीर मारते हैं। बहुत कम है कि इन के तीर का निशाना ग़लत लगे। इन लोगों में कोई हकीम या डॉक्टर नहीं है और न वे कुछ दवा जानते हैं। उन के यहाँ सब बीमारियों का ईलाज लहू निकालना है। जब कोई बीमार होता है तो वो ख़ुद या उस का कोई अज़ीज़ निहायत बेदर्दी और अनाड़ीपने से बोतल के टुकड़ों से ज़ख़्म कर के ख़ून निकाल देता है। और जब कोई मर जाता है तो एक टोकरी में मुर्दे को रख कर उस के घुटनों को मरोड़ कर उस की छाती तक ला कर बांध देते हैं और सारे अंगों को दरख़्त के छिलकों से कसते हैं और फिर क़ब्र खोद कर उस में गाड़ देते हैं और क़ब्र के नज़दीक हमेशा आग जलती रहती है और एक या दो महीने के बाद उस की क़ब्र खोद कर उस का मातम कर के उस की हड्डियों को उस के सब अज़ीज़ आपस में तक़सीम कर लेते [बाँट लेते] हैं और फिर उन को हर्ज़ [तावीज़] जान कर के अपने साथ रखते हैं और कभी लाश को बजाए गाड़ने के एक मचान पर रख देते हैं या किसी दरख़्त की शाख़ पर लटका देते हैं।

उन का अक़ीदा [विश्वास] है कि मरने से आदमी नेस्तोनाबूद [बरबाद] हो जाता है। वो लोग नाचते और गाते भी हैं मगर कोई बाजा उन के पास नहीं है और न सुर-ताल उन को मालूम है। इन लोगों का कोई मज़हब और मिल्लत [धर्म] नहीं है और न कोई उन का मज़हबी सरदार और मुल्लान है मगर अख़लाक़ [शिष्टाचार] और आदमीयत और दयानत व रास्तबाज़ी [ईमानदारी और सदाचार] उन में है। पहले ये लोग रुपया अशरफ़ी और पैसों की कुछ क़द्र नहीं जानते थे। जो कोई इन को देता, उस को ले कर और देख-भाल कर ज़मीन

पर फेंक देते थे मगर अब तो बड़े लालची हो गए। राह चलतों से पैसा-पैसा कर के सवाल करते हैं।

इन जंगलियों की उम्र बहुत कम होती है और इन की लड़कियाँ भी बहुत जल्द बालिग़ हो कर और तीस बरस की उम्र तक बुढ़्ढी फूँस हो जाती हैं। दूधनाथ नाम एक हिंदुस्तानी आदमी ने बहुत अरसा हुआ एक जंगली औरत से शादी भी की थी मगर उस की रिहाई हो जाने के सबब से वो हिंदुस्तान को चला गया और बेचारी जंगलन को वहीं छोड़ चला आया।

आब-ओ-हवा और क़ानून

सन 1858 ईसवी से 1865 तक तो इन टापुओं की आब-ओ-हवा ज़हर की तरह क़ातिल थी, जिस को ज़ख़्म हुआ, वो तीन रोज़ बाद सड़ गया और चौथे दिन मर गया। ज़ख़्म क्या था गोया मौत का सन्देशा था। शुरू आबादी में यहाँ इसकर्वी [Scurvy] की बीमारी भी बड़े ज़ोर-शोर से थी। ये एक जहाज़ी बीमारी है, मुँह पक जाता है और पिण्डलियाँ सख़्त पत्थर सी हो जाती हैं और आदमी मर जाता है। इस बीमारी से भी हज़ारों आदमी परलोक के राही हुए मगर शुक्र है ख़ुदा का कि हमारे वहाँ पहुँचने से एक बरस पहले वहाँ के सब रोग दूर हो कर वो जज़ीरा ख़ूबी आब-ओ-हवा में रश्क़-ए-कश्मीर [कश्मीर को लज्जित कर देने वाला] हो गया था, जहाँ बीस बरस तक हमारा सर भी न दुखा और बड़े आराम और राहत से हमारी क़ैद बसर हुई। अधिक बीमारी और नई आबादी की वजह से, अंग्रेज़ों ने यहाँ के क़ानून भी क़ैदियों के वास्ते निहायत नरम कर रखे थे और क़ैदियों से हर तरह का सलूक करते थे मगर जब वहाँ की आब-ओ-हवा उम्दा [बढ़िया] हो गई और आबादी भी बढ़ गई तब तो वहाँ के ऐसे सख़्त कानून बनाए कि अल्लाह हमें बचाए, हिन्द के जेलों पर भी सख़्ती बढ़ा दी। मगर हम लोग एक ऐसे बीच के ज़माने मे पहुँचे थे कि आब-ओ-हवा तो उम्दा हो गई थी मगर अभी क़ानून सख़्ती की तरफ़ बदले न गए थे, इस वास्ते उक्त टापुओं के आम क़ानून के मुताबिक़ विधिनुसार, हम को हर तरह का आराम और आसाइश [सुख] और ओहदे और तनख़्वाह वग़ैरा जाते ही मिल गए।

मगर हमारे पहुँचने के थोड़े दिन बाद क़ानून सख़्त होने लगे। आख़िर को यहाँ तक नौबत पहुँची के नया क़ैदी यहाँ आ कर दस बरस तक सख़्त मशक़्क़त [श्रम] करे और भण्डारे से पुख़्ता खाना पावे और वर्दी का कपड़ा पहने और बारक में रहा करे और किसी क़िस्म की मेहरबानी उस पर न की जावे, चुनांचे सन 1876 ईसवी में अण्डमान में जारी किए गए क़ानून का एक फ़िक़रा [वाक्य] बतौर मिसाल नीचे लिखता हूँ और वो यह है कि" कालापानी में क़ैद की सज़ा से सख़्त मशक़्क़त का करना और सिर्फ़ इतना खाना पाना

कि जिस से आदमी ज़िन्दा रहे, ज़रूर और लाज़िम हो जाता है।" मगर ये भी ख़ैर रही कि जिस क़द्र नए क़ानून सख़्ती के आते रहे, वो सिर्फ़ नए आने वाले क़ैदीयों पर असर डालने वाले होते थे। हम पुराने क़ैदी हमेशा उन से मुक्त, अपवादित हो जाते थे।

भेदभाव की मिसालें

मैंने वहाँ जा कर देखा कि इस ग़दर सन 57 ईसवी की बदौलत बीसों राजे और नवाब और ज़मींदार व मौलवी, मुफ़्ती, क़ाज़ी व डिप्टी कलेक्टर व मुंसिफ़ व दूसरे दर्जे का जज व सब से बड़ा जज व रिसालदार व सूबेदार व जमादार वग़ैरा वहाँ क़ैदी हैं मगर वो मुअज़्ज़िज़ [प्रतिष्ठित] हिंदुस्तानी जेंटलमेन भी जिन के आगे सैंकड़ों-हज़ारों नौकर थे, काली चमड़ी और जन्म हिन्द की वजह से, दूसरे चूढ़े-चमारों की तरह मोटा-झोटा खाना पाते और आम लोगों के साथ सख़्त मशक़्क़त करते थे मगर हज़रत यूरोपियन गोरे, बल्कि अकसर दोग़ले काले-कलूटे [ऐंग्लो-इण्डियन] भी सिर्फ़ कोट-पतलून या कलमा ईसाई [ईसाई मूलमंत्र] के सम्मान की वजह से, पलटन के गोरों के बराबर खाना-कपड़ा पाते थे। एक अलहिदा बंगला उन के रहने को, एक नौकर बिना तनख़्वाह सेवा को और जिस गोरे या दोग़ले को लाइसेंस मिल गया, उन को 50 फ़ी माहवार [प्रति माह] तक नक़द तनख़्वाह भी मिलती थी।

ये तो सब कुछ था मगर सन 79 की एक नई भयावह घटना देख कर लोगों को रोना आता था और वो ये है कि सन 79 में एक बदबख़्त [अभागा] राजा जगनाथपुरी का, जिस के वास्ते मुद्दत तक अख़बारों ने भी सर फोड़ा था, क़ैद हो कर काले पानी में पहुँचा मगर काला चेहरा होने की वजह से, बेचारा आम चूढ़े चमारों के साथ खाना पाता और मशक़्क़त [श्रम] करता था और जब बवजह नाज़ुकमिज़ाजी उस से मशक़्क़त न होती तो बैत और जेल और चक्की पीसने की सज़ा पाता रहा। आख़िर इन्हीं सदमों से थोड़े रोज़ बाद वो वीपर [Viper] जेल में मर गया और उन्हीं अय्याम [दिनों] में मिस्टर लेम्टेयर [LeMaitre] नाम एक करानी [ईसाई] भी, गो बदन से काला मगर यूरोपियन नाम और कोट-पतलून से मुशर्रफ़ [प्रतिष्ठित], मुल्क अवध से क़ैद हो कर वहाँ पहुँचा। उस को गोरों कैसा उम्दा खाना मिलने लगा। एक अलहिदा मकान, पलँग वग़ैरा कुल सामान ऐश व आराम का मिल गया और बजाए मशक़्क़त के, कचहरी डिप्टी कमिश्नर में कलार्क हो गया। चूंके ये कमबख़्त राजा और ये ख़ुशनसीब ईसाई, दोनों एक ही वक़्त में वहाँ पहुँचे थे, यह सलूक में अन्तर और तरफ़दारी कोट-पतलून और भारत के सज्जन व अमीर लोगों की क़द्र न होना देख कर हर किसी को रोना आता था।

रोज़गार, विवाह और समुद्री आफ़तों के कुछ अनुभव

सुन्दर संयोग और ख़ुदा की मेहरबानी से हमारे अण्डमान में पहुँचने के एक हफ़्ते बाद पचास क़ैदी बग़ावत सन 57 के, जिन में अकसर मुंशी और जमादार वग़ैरा भी थे, राजा ब्रुक्स के बुलाने के अनुसार टापू सरावक [Sarawak] को, (जो एक मलाई [Malaya] मुल्क सिंगापुर के पूर्व को स्थित है) भेजे गए थे। इस सबब से अच्छे-अच्छे ओहदे मुंशियों के ख़ाली थे। मेरी लियाक़त [योग्यता, विद्वता] का हाल उन लोगों को बज़रिए अख़बारों और मौलवी अहमदुल्लाह साहब से मालूम हो चुका था, इस वास्ते मैं तो जहाज़ से उतरने के साथ ही कचहरी, साहब सुप्रिंडेंट और चीफ़ कमिश्नर में मुहर्रिर सेक्शनवार या नायब मीरमुंशी [डेपुटी हेड क्लर्क] मुक़र्रर हो गया। एक घर रहने को, एक नौकर बिलातनख़्वाह ख़िदमत [सेवा] को मिल गया। आज़ादों की तरह, जहाँ चाहता रहता, जहाँ चाहता जाता, रोक-टोक बिल्कुल न रही। उस वक़्त मेरा ऐन आलम शबाब [युवावस्था का समय] था, जिस में दीनी और दुनियवी, दोनों तरह से अकेलापन, दिक़्क़तों और बुराइयों से ख़ाली न था, इस वास्ते अव्वल मैंने चाहा के मुल्क से अपनी बीवी को बुला लूँ मगर उस को क़ानून बाधक हुआ। इस वास्ते मैंने अपने पहुँचने के चन्द माह बाद एक हाल ही में आई कश्मीरी औरत से शादी कर ली। ये औरत निहायत कमसिन [छोटी उम्र की], एक अचानक आई मुसीबत में फंस कर वहाँ पहुँची थी। कुछ अरसा मेरे साथ रहने से बड़ी दीनदार और ख़िदमतगुज़ार [अपने धर्म पर विश्वास रखने वाली और दिल से सेवा करने वाली] हुई। अब मैं देखता था कि धीरे-धीरे हर एक चीज़ का, जो हिन्द में मुझ से छूटी थी, बदले में मुझ को मिलना शुरू हुआ और जिन्होंने मेरी दुश्मनी पर कमर बांधी थी, एक के बाद एक तबाह होने लगे, यहाँ तक कि मेरे हिन्द में वापस आने के वक़्त तक हर शख़्स [व्यक्ति] दर्जे के अनुसार ख़ुद अपने-अपने मुनासिब प्रतिफल को पहुँच चुका।

25 दिसम्बर सन 67 को जिस ज़माने में ये ख़ाकसार जज़ीरा पर्सवेरस पाइंट [Perseverance Point Island] में था, मौलवी अब्दुल रहीम साहब भी अण्डमान में पहुँच गए और वहाँ जा कर घाट मुंशी मुक़र्रर हुए और फिर उस के कुछ अरसे बाद हस्पताल मुहर्रिर [लिपिक] हो गए। क़रीब नौ बरस के इस तरह से कार सरकार कर के, फिर उन्होंने दुकान बज़ारा खोलने का टिकट ले लिया और उसी दुकानदारी के पेशे से उन की रिहाई हो गई। समंदर किनारे के मुल्कों और जहाज़ी मुलाज़िमों और पर्यटकों पर अकसर समुद्री आफ़तें भी पड़ा करती हैं जिन से हिन्द के आदमी पूरी तरह अपरिचित हैं। काले पानी में भी हर साल बहुत से आदमी और कश्तियाँ समंदर का शिकार होते हैं। मुझ को भी बंदिश के इस समयकाल में कई बार उन मुसीबतों का सामना हुआ मगर जब हम बिल्कुल निरास हो

कर उसी की मदद की इल्तिजा [प्रार्थना] करते, तो डूब कर फिर बच जाते। सब में से बहुत सी मुसीबतों के, मैं सिर्फ़ तीन सख़्त आफ़तों का ज़िक्र करता हूँ, उसी पर बाक़ी को अनुमान कर लीजिए।

एक बार मैं जज़ीरा रॉस [Ross] से पर्सवेरस पाइंट [Perseverance Point Island] नाम टापू को जाता था। पर्सवेरस पाइंट के नज़दीक पहुँच कर ऐसा सख़्त तूफ़ान हुआ कि कश्ती डूबने में कुछ बाक़ी न रहा था। उस वक़्त एक मौज [लहर] ने उस कश्ती को उठा कर पत्थर के पुल के नज़दीक कर दिया कि मैं और एक दो दूसरे मुसाफ़िर फुर्ती कर के पुल पर कूद पड़े। इधर हमारा कूदना था कि एक दूसरी मौज ने कश्ती को उठा कर पुल पर दे मारा। कश्ती पुर्ज़ा-पुर्ज़ा हो गई और मल्लाह व मुसाफ़िर बाक़ीमांदा [नावचालक और बाक़ी बचे हुए यात्री] सख़्त घायल हुए। इसी तरह एक रोज़ अबरडीन से रॉस को जाते वक़्त एक तूफ़ानी मौज ने कश्ती को पुल पर पटकना चाहा था कि हम कूद कर पुल पर जा खड़े हुए। तब कश्ती पुल से टकरा कर पुर्ज़े-पुर्ज़े हो गई और मुसाफ़िर घायल हुए और बदसवारी डूबने से बचे। एक तीसरी बार हमारी कचहरी का सारा अमला [कर्मचारी वर्ग] एक कश्ती में सवार हो कर रॉस से अबरडीन को आता था, बीच राह में एक ऐसा सख़्त तूफ़ान आया कि सब लोग नाउम्मीद हो गए और अपने को मुर्दा समझ चुके थे। बारिश और हवा भी बड़े ज़ोर से थी, न नज़दीक किनारा था, न कोई फ़रियाद सुनने वाला था। अंधेरा ऐसा था कि किनारों से भी हमारी इस मुसीबत को कोई न देख सकता था। उस वक़्त कश्ती का पतवार टूट गया, पानी से कश्ती भर गई, कोई उपाय व इलाज बाक़ी न रहा। तब मैंने उस फ़रियाद सुनने वाले और बेबसों का हाथ पकड़ कर मदद करने वाले को पुकारा। मेरा दुआ करना था कि ग़ैब [भाग्य] से, हमारे नज़दीक से एक बड़ी कश्ती, जिस में सरदार बघेल सिंह साहब सुप्रिंडेंट पुलिस सवार थे, ज़ाहिर हुई और हम को उस ख़राब हाल में देख कर झटपट उन्होंने हम को अपनी कश्ती में ले लिया और सही सलामत किनारे तक पहुँचा दिया।

मित्र की और बीवी की मृत्यु; फिर से विवाह के प्रयास

जनवरी सन 68 में ये ख़ाकसार हदो टापू को बदल आया और वहाँ स्टेशन मुहर्रिर [स्टेश्न लिपिक] मुक़र्रर [नियुक्त] हो गया। 20 फ़रवरी सन 1868 ईसवी को बमक़ाम रॉस मौलवी यहया अली साहब स्वर्ग के मुसाफ़िर हुए। हालाँकि मैं उन से बहुत फ़ासले पर जज़ीर-ए-हदो में था और मुझ को उन की बीमारी तक की भी इतिलाअ [सूचना] न हुई थी मगर तक़दीर मुझ को ऐन उस वक़्त रॉस टापू को ले गई कि जब उन का जनाज़ा तैयार हो कर नमाज़ पढ़ने की तैयारी हो रही थी। हमारे मुक़द्दमे के कुल आदमी उन की तज्हीज़-ओ-तक्फ़ीन [मुर्दे के लिए ज़रूरी सामान तैयार करने] में शरीक थे। मेरी बीवी मौलवी यहया

अली साहब से शिष्य भी थी और उन से बहुत महब्बत करती थी। उस को इस मौत की सबब से ज़्यादा सदमा पहुँचा, बल्कि 30 अप्रैल सन 68 ईसवी को मौलवी साहब की मृत्यु से सवा दो माह बाद वो नेकबख़्त [भाग्यवान] भी राही फ़िरदौस [स्वर्ग की मुसाफ़िर] हुई। उस का हिंद से क़ैद हो कर जाना गोया इसी ख़ात्मा-ए-बख़ैर के वास्ते था कि थोड़े दिनों में उस को नसीब हो गया।

इस बीबी की मृत्यु के बाद मैंने सब ज़ेवर वग़ैरा बेच कर के, क़रीब तीन सौ रुपये देहली को अपनी बीवी के पास भेजे थे कि इन का माल, क़िस्म जूता वग़ैरा, ख़रीद कर मेरे पास भेज देवे क्योंकि उन दिनों में पोर्ट ब्लेयर में देहली का माल तिगने-चौगने दाम पर बिक्री होता था। मगर ये माल राह में बहुत ज़ाया हो गया और देहली से रवाना होने की तारीख़ से दो बरस बाद सड़-गल कर थोड़ा सा माल सन 1870 ईसवी में मेरे पास पहुँचा था। इस में से सिर्फ़ एक सौ रुपये मुझ को वसूल हुए और वो सौ भी जब दोबारा एक दोस्त के पास कलकत्ता को, और माल मंगाने के वास्ते रवाना किए, तो वो उन को ले कर कलकत्ता से कूच कर गया। ग़रज़ [यानी] पेशा तिजारत [व्यापार] मेरे वास्ते अल्लाह की नज़र में मंज़ूर न था, जिस को उस तारीख़ के बाद मैंने फिर कभी नहीं किया।

इस बीवी की वफ़ात [मृत्यु] के बाद मैं और दो बरस अकेला रहा मगर हदो टापू, जहाँ इस अकेलेपन की हालत में मेरा ठिकाना था, औरतों से भरा हुआ था और मैं उस टापू में अफ़सर था। बहुत कस्बी [वेश्या] औरतों ने मुझ को अपना शिकार बनाना चाहा मगर ईश्वरीय सुरक्षा मेरे शामिल हाल रही। अल्लाह रब-उल-इज़्ज़त ने मुझ को हलाक़ होने नहीं दिया, हालाँकि मेरे स्टेशन लिपिक के पद के सबब से रात-दिन मुझ को उन फ़ाहिशों [दुश्चरित्रों] के साथ रहना पड़ता और तरह-तरह के ऐसे सरकारी काम पड़ते कि वो अकसर मेरे घर में भी आतीं। मैंने ये कैफ़ीयत [हालत] देख कर अपनी बीवी को पानीपत से बुलाना चाहा मगर उस वक़्त वो राज़ी न हुई और जब एक दफ़ा उस की कुछ रज़ामन्दी भी हुई थी तो मेरी दरख़्वास्त उस वक़्त के अधिकारी ने नामंज़ूर कर दी। इस वास्ते मजबूर हो कर किसी नेकबख़्त [भाग्यवान, सच्ची और सुशील] औरत से वहीं निकाह करने की सलाह ठहरी और इस बाबत दरगाह-ए-इलाही [ईश्वर के दरबार] में भी इल्तिजा की गई कि इस मुक़द्दमे में जैसे तुझे पसन्द हो, आकाश के पर्दे से ज़ाहिर कर दे और किसी नेकबख़्त से मेरा संजोग कराइयो। अव्वल कुछ दोस्तों की सलाह से एक के बाद एक, दो पंजाबी मुसलमान औरतों से मेरे निकाह की बातचीत शुरू हुई मगर दोनों तरफ़ की रज़ामंदी होने और कोई प्रत्यक्ष कारण न होने के बावजूद, उन दोनों जगहों की सलाह रद्द हो गई और ग़ैब [ईश्वर की ओर] से वो बात दरहम-बरहम [तितर-बितर] हो गई। उस वक़्त उस रद्द होने के भेद प्रकट तौर पर

मालूम न होते थे क्योंकि वो दोनों औरतें बारक में बन्द रहती थीं, उन के चाल-चलन पर कोई राय क़ायम नहीं हो सकती थी मगर थोड़े रोज़ के बाद जब वो दूसरे आदमियों से शादी कर के बारक से बाहर हुईं तो पूरी फ़ाहिशा और बदकार [दुश्चरित्र] निकलीं। उस वक़्त वो अल्लाह की इच्छा से रद्द शादी मालूम हुई और अल्लाह से मिली इस हिफ़ाज़त [सुरक्षा] पर मैं शुक्र-ए-इलाही बजा लाया।

निकाह

इस बीच में कि मैं एक सदाचारी और जवान औरत की खोज में था, एक हिंदू औरत, क़ौम बरहमन ज़िला अल्मोड़ा की रहने वाली, नई क़ैद हो कर वहाँ पहुँची और हदो की औरतों की बारक में हमारे हवाले हुई। मैंने उस को देखा कि निहायत ख़ुशचलन और शर्मनाक औरत है मगर परले सिरे की अपने हिन्दू धर्म में कट्टर है। किसी मुसलमान औरत के नज़दीक खड़ा होना और कपड़ा छूना तक हरगिज़ गवारा नहीं करती। बारक की मुसलमान औरतें उस के धार्मिक कट्टरपन से तंग आ गईं। मैंने चर्चा चलने पर एक रोज़ उस से कहा कि अगर तू मुसलमान हो जावे तो तेरे वास्ते दुनिया और परलोक में भला होगा और आग दोज़ख़ [नरक की आग] से निजात पावेगी। वो बोली कि अगर तुम मुझ से शादी कर लो तो मैं अभी मुसलमान हो जाती हूँ। मैंने ये जवाब सुन कर सोचा कि मुझ को और क्या चाहिए? ग़ालिबन [शायद] ये मेरी दुआ का असर है के ख़ुदावंद-ए-करीम [मेहरबान ख़ुदा] इस को अल्मोड़ा से इसी ग़रज़ [प्रयोजन] के वास्ते लाया है। फिर 27वीं शब [रात] रमज़ान-उल-मुबारक को सैंकड़ों आदमियों के मजमे में बड़ा भारी आम खाना कर के मैंने उस को मुसलमान किया और कलमा और अरकान [मूलमंत्र और बुनियादी तत्त्व] इस्लाम के सिखलाए। एक मुसलमान औरत को उस की शिक्षक मुक़र्रर [नियुक्त] कर दिया। उस ने उस को नमाज़ वग़ैरा सब सिखला दी।

जब वो ख़ूब पक्की मुसलमान हो गयी, तो मैंने उस वक़्त के अधिकारी से इतिलाअ [सूचित] कर के 15 अप्रैल सन 1870 ईसवी को उस से निकाह कर लिया। असंख्य मुसलमान और हिन्दू मेरे निकाह में शरीक हुए। हमारे मौलाना अहमदुल्लाह साहब ने निकाह पढ़ कर कल्याण और मैत्री के लिए दुआ की। ख़ूब दिल से की। निकाह के दूसरे दिन बड़ी धूमधाम का उस का वलीमा [दूल्हा की ओर से विवाह-भोज] हुआ। इस बीवी ने मुझ से बयान किया कि मैंने अपने इस्लाम में प्रतिष्ठित होने का ख़्वाब अपने मुल्क में देखा था। सो अब उस की ता'बीर [स्वप्नफल] ज़ाहिर हो गयी। उस ने ये भी बयान किया कि गो मैं हिन्दू के घर में पैदा हुई और पहाड़ी इलाक़े अल्मोड़ा में परवरिश पाई कि जहाँ मुसलमान का नाम भी नहीं है मगर अपनी तारीख़ पैदाइश से आज तक मैंने कभी शिर्क [अनेकेश्वरवादी रस्मों

का पालन] नहीं किया और न किसी देवता को पूजा। ये बुतों की पूजा-पाट मुझ को निहायत बुरी मालूम होती थी। बल्कि इस सब से मेरी माँ मुझ से बहुत नाराज़ रहती और इस के रोक के वास्ते मुझ को एक बार मेरी माँ एक पंडित के पास भी ले गयी जिस ने अपनी पोथी देख कर ये कहा था कि ये लड़की जल्द तुम से जुदी हो जावेगी और तुम्हारे पास न रहेगी।

हमारे मुक़द्दमे के सब आदमी जो उस वक़्त पोर्ट ब्लेयर में थे, मेरी शादी और वलीमा में शरीक हुए। हमारे एक शागिर्द मिस्टर रोप इस्टराफ़, असिस्टेन्ट कमिश्नर इन्चार्ज हदो, ने उस शादी में नकद और सामान ज़रूरी से मुझ को मदद दी थी। मेरी यह वही बीवी है जिस से मुझ को 9 बच्चे पैदा हुए और पोर्ट ब्लेयर से हिन्द को मेरे साथ आई और ये सोलह साल बहुत मित्रता, सहचरता, आज्ञापालन और सेवा तथा सतीत्व से उस ने बसर कर दिए – अल्लाहुम्मा ज़िद फ़ज़िद – या अल्लाह इज़ाफ़ा कर, और इज़ाफ़ा कर।

फँसते-फँसते बचना

मैंने पोर्ट ब्लेयर में पहुँच कर अपने आराम से रहने और शादी करने और आज़ाद तौर पर नौकरी सरकार करने की ख़बर देने वाले कुछ पत्र हाजी मुहम्मद शफ़ी साहब अम्बालवी को वक़्तन फ़ वक़्तन [कभी-कभी] लिखे थे। उन लोगों को भी लिखे थे जो दूसरे बेक़सूर मुसलमानों को फंसा कर बतौर आधे रिहाशुदा, तिरस्कार की जूतियाँ खाते फिरते थे - मैंने अपनी राहत और ख़ुदा से मिली मदद को ख़ूब वाचालता से बढ़ा-चढ़ा कर बयान किया था ताकि उन्हें अपने किए पर अफ़्सोस हो। लेकिन कभी किसी ख़त का जवाब मेरे पास नहीं आया। मगर इस बीच में ये मालूम हुआ कि किसी ने उन में से वो पत्र सरकार के प्रति शुभेच्छा प्रकट करने की दृष्टि से सरकार में पेश कर दिए और गवर्मेन्ट हिन्द तक पहुँच कर उन पर बहुत बहस हुई और सुप्रिंडेंट पोर्ट ब्लेयर से कैफ़ीयत [दशा] भी तलब की गई। क़रीब था कि अगर अल्लाह की मेहरबानी मेरे शामिले हाल न होती और पोर्ट ब्लेयर के अधिकारी मेरे वास्ते बतौर वकील न झगड़ते और उन मेहरबानियों और रिआयतों का मुझ से छीन लेना पोर्ट ब्लेयर के सामान्य नियमों के विरुद्ध न होता तो मेरे वास्ते हमेशा को सख़्त मशक़्क़त [कठोर श्रम] करने का हुक्म हो जाता। और ये भी एक शान-ए-इलाही और ख़ुदा से मिली मदद थी कि जॉन लॉरन्स साहब सा गवर्नर जनरल मुझ से ग़रीब क़ैदी से, जिस के वारंट में आजीवन कठोर श्रम करने का हुक्म हो, सख़्त मशक़्क़त कराना चाहे और वो रब-उल-इज़्ज़त ऐसे झगड़ों पर भी मुझ को मशक़्क़त से बचा लेवे।

एक यह बात भी ख़ुदा की मदद से थी कि जब हम पोर्ट ब्लेयर में पहुँचे, उस वक़्त वहाँ के सब हाकिम मद्रास के इलाक़े से थे। बग़ावत सन 1857 ईसवी और वहाबियों के युद्ध के वे कुछ भी जानकार न थे। इस सबब से उन के सीने बहुत साफ़ और धर्म सम्बन्धी पक्षपात

से ख़ाली थे। उन्होंने हमारे साथ कुछ विद्वेष नहीं किया बल्कि हमारे अच्छे चलन और बढ़िया कार्यकौशल की वजह से, सन 1870 ईसवी तक सब क़ैदियों से ज़्यादा मेहरबानियाँ और रिआयताँ हमारे साथ होती रहीं। लेकिन जब पहली बार डॉक्टर हंटर साहब ने नमक-मिर्च लगा कर और हमारे मुक़द्दमे को राई से पहाड़ और रस्सी से सांप बनाया और लिख दिया कि वहाबी और बाग़ी, दोनों के एक ही अर्थ हैं और फिर बंगाल कोर के साहब लोग उस टापू में आने लगे, उस वक़्त तो हम लोग एक निशाना हो गए। राह गली चलते में हमारी तरफ़ इशारे हुआ करते थे और बहुत से साहब लोग हमेशा इसी घात में रहे कि कोई मौक़ा और क़ानूनी हीला पा कर हम को तकलीफ़ देवें। लेकिन जब सच्ची हिफ़ाज़त करने वाला ख़ुदा किसी की रक्षा करे तो उस को कौन तकलीफ़ दे सकता है? मैंने हमेशा देखा कि जब एक साहब हमें तकलीफ़ देने को पीछे पड़ा तो उस के मुक़ाबिल [सामने] दूसरा साहब उस से भी बड़ा हमारी मदद और सहयोग को खड़ा हो गया।

झूठे मुक़द्दमे और साज़िशें

करनैल मैन साहब [Colonel Man] के अह्द [समय] में एक बड़े यूरोपियन अफ़सर के बहलावे से मेरे ऊपर एक झूठा मुक़द्दमा बलपूर्वक मदद हासिल करने का दायर किया गया और करनैल मैन साहब सा पक्षपात न करने वाला हाकिम मुझ से ऐसा बुरा नाराज़ हो गया कि मुझ को फ़ौरन अदालत में तलब कर लिया। उस वक़्त मेरे बहुत दोस्तों ने मुझ को ये सलाह दी थी कि जान बचाने के वास्ते झूठ बोलना जायज़ है, तुम उस मुक़द्दमे में अपनी अज्ञानता बयान कर के अपनी जान बचा लो मगर मैंने कहा कि जो कुछ हो सो हो, मैं तो सच बोलूँगा। आख़िर जब मुक़द्दमा पेश हुआ, सब से अव्वल मैं बुलाया गया और उक्त करनैल साहब मेरे बयान लिखने लगे। मैंने सही तौर पर हर्फ़-ब-हर्फ़ बयान कर दिया कि हाँ, मेरे सामने मिस्टर हेवुड ओवरसीयर (प्रतिवादी, जिस पर दावा किया गया) ने दावा करने वाले हमीद ख़ान नामक जमअदार की जायदाद जहाँ-जहाँ पाई, बतौर-ए-ख़ुद ज़ब्त कर के आप नीलाम और बिक्री कर दी और उस की दौलत के दाम आप खा गया। मैं स्टेशन लिपिक होने की वजह से, ज़रूर उस की हमराह [साथ] था। मेरा इस क़द्र बयान होने पर मिस्टर हेवुड से सब रुपया हमीद ख़ान मुद्दई को दिलाया गया और ज़िक्र में आया हेवुड, जो सौ रुपया माहवार का और ओवरसीयर था, नौकरी से मौक़ूफ़ [रद्द] हो कर उन टापुओं से बदल किया गया और मैं अपनी सच की कृपा से साफ़ बरी हो कर अपने घर को चला आया।

जनवरी सन 1869 ईस्वी में लफ़्टंट पराथ्रू साहब जो इस वक़्त करनैल और क़ाइम मक़ाम [किसी के स्थान पर काम करने वाले] चीफ़ कमिश्नर पोर्ट ब्लेयर के हैं, काले पानी

में असिस्टेन्ट हो कर आए। अप्रैल सन 69 में हमारी बकरा ईद पड़ी। एक बैल मोल ले कर अपने दस्तूर के अनुकूल हम ने क़ुर्बानी करना चाहा था मगर क़ुर्बानी करने के वक़्त हिंदुओं ने बलवा कर के वो बैल हम से छीन लेना चाहा। हमारे साथी भी बहुत मुसलमान थे, हम ने उन का ग़ैर मुनासिब हमला समझ कर बैल वापिस नहीं दिया और क़ुर्बानी कर दिया। इस पर बड़ा बलवा और हंगामा हुआ। क़रीब था कि दस-बीस ख़ून हो जावें मगर पुलिस और ओवरसीयर के जल्द पहुँच जाने पर नौबत मारपीट और क़त्ल की न पहुँची लेकिन मुक़द्दमा कचहरी में चलने लगा। गो हिन्दू बड़े मालदार और सत्ता के सहायक और हकूमत करने वालों के मुँह-चढ़े थे मगर पराश्नू साहब की कोशिश और न्याय से हम लोग बच गए।

इस क़ुर्बानी की घटना के बाद आदत के अनुसार ख़ुद सब पोर्ट ब्लेयर के हिन्दू सहमत हो गए और ये सलाह हुई कि चाहे हज़ारों रुपए खर्च हो जावें मगर मुअल्लिफ़ [सम्पादक यानी इस लेखक] को सख़्त सज़ा कराई जावे। इस लिए मोंगा लाल, एक मेरे मातहत मुहर्रिर [लिपिक] को इस बात पर आमादा किया कि जिस तरह हो सके, सच चाहे झूठ, हिसाब नकदी इस्टेशन में परिवर्तन करा के कोई मुक़द्दमा ग़बन और चोरी रुपया सरकारी का, मुझ पर दायर कराया जावे। चुनांचे मुझे सूचना किए बिना, बसाज़िश एक हिन्दू अंग्रेज़ी रीडर के, एक हिसाब नीलाम में, जो मेरे माध्यम से हुआ था, क़रीब सौ रुपए के ग़बन मेरे ऊपर क़ायम कर के और फ़ारसी और अंग्रेज़ी, दोनों हिसाबों से वो राशियाँ प्रमाणित करा के, बहुत से गवाह भी तैयार कर लिए। गो साहिब ज़िला तक छिपे तौर पर इस की रिपोर्ट हो गई मगर मुझ को अभी तक इस काररवाई का कुछ इल्म [ज्ञान] न था।

आख़िर एक रोज़ यकबयक [अचानक] मेरी सब किताबें क़ैद हो गईं। उस वक़्त मुझ को मालूम हुआ कि मेरे क़त्ल का सब सामान तैयार है। उस सुबह को उस की जाँच का कोर्ट होने वाला था। ख़ैर, मैंने इस काररवाई से सूचित हो कर अपने रब से दुआ की औऱ ओवरसीयर इस्टेशन से, जिस की हिरासत में मेरी किताबें थीं, साज़िश कर के गुप्त तौर पर एक घण्टे के वास्ते अपनी किताबें वापिस ले लीं। और उसी एक घण्टे के अन्दर वह कुल काररवाई जालसाज़ी की, जो महीनों में तैयार हुई थी, रफ़ा-दफ़ा कर के, अपना हिसाब ठीक-ठीक तैयार कर के, किताबें फिर ओवरसीयर के हवाले कर दीं। दूसरे दिन जब कोर्ट शुरू हुआ, दावा करने वालों की पहचान के अनुसार किताबों में मेरा हिसाब देखा गया तो सब ठीक। देरी न थी और चूंकि पराश्नू साहब, उसी हाकिम के सामने ये मुक़द्दमा था, जिस ने मुक़द्दमा-क़ुर्बानी से चन्द रोज़ पहले हम को बरी किया था, उस ने फ़ौरन कह दिया कि ये मुक़द्दमा सिर्फ़ झूठा है, बैल की क़ुर्बानी से जुड़े उसी मुक़द्दमे की दुश्मनी से है। मोंगा लाल मेरे मातहत मुहर्रिर को छह माह क़ैद सख़्त वीपर [Viper] जेल की सज़ा दे कर उस हिन्दू

रीडर अंग्रेज़ी को एक दर्जन बैंत की सज़ा दी और मुझ को बरी कर दिया। हिंदुओं को तो मेरी तरफ़ से ऐसा ग़ुस्सा था कि वहीं कोर्ट में खड़े-खड़े एक दूसरा इलज़ाम मुझ पर क़ायम कर दिया। तफ़सील उस की ये है कि ऊपर ज़िक्र में आए मोंगा लाल ने सज़ा पाने के बाद, हाथ बांध कर अर्ज़ किया कि कुछ मेरी अर्ज़ है। साहब ने कहा, क्या है, कहो। तब वो बोला कि हज़ूर ने जो लाल लकड़ी के लम्बे-चौड़े-मोटे टुकड़े मुअल्लिफ़ को [यानी इस किताब के सम्पादक-लेखक, मुझे] वास्ते बनवाने बाज़ार के दिए थे, उस ने उन तख़्तों से अपने घर के दरवाज़े और तख़्तपोश व सन्दूक़ वग़ैरा बनवा लिये और बाज़ार में नहीं लगाए। अगर हुज़ूर इसी वक़्त तकलीफ़ करें तो मैं वो सब चीज़ें मुअल्लिफ़ के घर से पकड़वा दूँ। जब ये बयान हो रहा था, मैं सर नीचे किए हुए अल्लाह तआला [ईश्वर महान] से दुआ करता था कि इस आफ़त से बचाना भी तेरा ही काम है क्योंकि जिन-जिन चीज़ों का उस ने नाम लिया था, सब मेरे घर में मौजूद थीं और उस वक़्त अगर हाकिम मुझ से सवाल करता तो मेरे ख़याल में मेरे नज़दीक सिवाए 'हाँ' के कोई जवाब न था। लेकिन उस दिलों को बदल देने वाले की क़ुदरत को सुनिए, इस अर्ज़ और दावे को ध्यान से सुनने के बाद, पराथ्रू साहब ने मोंगा लाल से कहा कि वो तख़्ता हम ने उस को दिया है, तुम को इस में जासूसी करने का क्या इख़्तियार [अधिकार] है। उसी दम उस को अदालत से बाहर निकलवा दिया और मुझ से फ़रमाया कि तुम घर को जाओ और होशियार रहो।

सन 1869 ईसवी में एक रात को, जब कि मेरे घर में क़रीब पाँच सौ रुपए सरकारी तनख़्वाह क़ैदीयान इस्टेशन हदो के रखे हए थे, मेरे घर खिड़की तोड़ कर एक चोर मेरे मकान के अन्दर घुस आया और बत्ती को, जो मेरे पलंग के नज़दीक जलती थी, बुझा दिया। एक छोटा सा सन्दूक़ रुपए से भरा हुआ मेरी पाएतों के पास रखा था। मैं बेख़बर सोता था। मुराद नाम का मेरा एक नौकर दूसरी कोठरी में था। इस वक़्त चोर को वह सन्दूक़ उठा ले जाने को कोई चीज़ बाधक न थी। यकबयक [अचानक] मेरी आँख खुल गई। मैंने अंधेरा देख कर और कुछ आहट पा कर अपने नौकर मुराद को बुलाया। नामुराद चोर ख़ाली हाथ उसी दम भाग गया और उस रब-उल-इज़्ज़त ने मेरी इज़्ज़त रख ली। बशर्त चोरी हो जाने उस सरकारी रुपए के, बज़ाहिर मेरी सख़्त ख़राबी और बर्बादी थी।

मार्च सन 1870 ईसवी में मैंने 150 रुपये की भेजी हुई एक हुण्डी अज़ तरफ़ [तरफ़ से] मिस्टर रोप इस्टराफ़ साहब बनाम मुंशी ग़ुलाम नबी साहब ख़ज़ाना कलकत्ता पर, अपनी शादी के लिए कुछ ज़रूरी सामान मंगवाने के वास्ते भेजना चाहा था। और वो माल भी एक दूसरे सौदागर के नाम से मंगाना तज्वीज़ किया था। क्योंकि मैं सरकार का कर्मचारी था, मुझ को न हुण्डी भेजने का इख़्तियार था, न माल मंगाने का, ये सब काररवाई नाजायज़ गुप्त तौर

पर की गई थी। जब मैंने हुण्डी समेत ख़त डाक में डाला, तो मेरे हिन्दू दुश्मनों को भी इस हाल की किसी ज़रिए से ख़बर हो गई। उन्होंने करनैल मैन साहब से मुख़बरी कर के फ़ौरन उस ख़त और हुण्डी को पकड़वा दिया और तज्वीज़ हुई कि हुण्डी के रूप में धन को ज़ब्त करने के अलावा मुझ को सज़ा भी होगी। जब मुझ को इस गिरफ़्तारी ख़त व हुण्डी की सूचना हुई तो जनाब-ए-इलाही में इल्तेजा कर के पराथ्रू साहब से जा कर सारा हाल बयान किया और वही मुक़द्दमा क़ुर्बानी इस दुश्मनी का सबब ज़ाहिर किया। पराथ्रू साहब ने मुझ से कहा कि तुम कुछ फ़िक्र न करो, मैं करनैल मैन साहब से मुलाक़ात कर के इस का हाल मालूम करूँगा। पराथ्रू साहब उक्त करनैल साहब के बंगले पर गए और उन से मुलाक़ात कर के मेरी हुण्डी और ख़त, दोनों वापिस ले आए और मुझ को ला कर दे दिया और फ़रमाया कि हिन्दू तुम्हारे दुश्मन हैं, तुम होशियारी से काम करो।

अगस्त सन 1870 ईसवी में मैं फिर कचहरी साहब चीफ़ कमिश्नर बहादुर में, मुख्यालय जज़ीरा रॉस को तब्दील हो गया। मई सन 1871 ईसवी में जब मैं जज़ीरा रॉस में था, मौलवी मुहम्मद हसन साहब हम लोगों की मुलाक़ात को पटना से पोर्ट ब्लेयर को आए थे और एक महीने तक रह कर फिर अपने मुल्क को वापिस तशरीफ़ ले गए। एक दिन जब मौलवी मुहम्मद हसन साहब बड़े शौक़-ओ-ज़ौक़ [बहुत अधिक रुचि] से कश्ती में सवार हो कर रॉस टापू से वीपर टापू को मौलवी अहमदुल्लाह साहब की मुलाक़ात के वास्ते जाते थे, रास्ते में वह कश्ती सख़्त तूफ़ान में पड़ी और क़रीब थी कि डूब जावे, उस वक़्त अपने डूबने से ज़्यादा मौलवी मुहम्मद हसन साहब को ये अफ़सोस था कि मौलवी अहमदुल्लाह साहब की ज़ियारत [दर्शन] भी नसीब न हुई। लेकिन यह सिर्फ़ अल्लाह द्वारा लिया गया इम्तिहान था। फिर वो तूफ़ान रफ़ा हो गया और उक्त मौलवी साहब सकुशल वीपर पहुँच गए और मौलवी अहमदुल्लाह साहब से मुलाक़ाती हुए। हमारी गिरफ़्तारी के बाद अंग्रेज़ों ने मौलवी मुहम्मद हसन को बहुत बार फंसा कर काले पानी भेजना चाहा था मगर ख़ुदा की मेहरबानी और मर्ज़ी से वह महफ़ूज़ [सुरक्षित] रहे मगर अल्लाह रब्ब-उल-इज़्ज़त ने इस प्रकार उन को भी काले पानी तक पहुँचा कर और कुछ समुद्री मुसीबतों में डाल कर काले पानी वालों के सत्कर्मफल में शरीक कर दिया।

लॉर्ड मेयो का क़त्ल

मार्च सन 1871 ईसवी में करनैल मैन साहब पेंशन पा कर विलायत को गए और अक्तूबर सन 1871 ईसवी में जनरल इस्टवारट [स्टुअर्ट] साहब जो आख़िर में जंगी लाट [कमाण्डर-इन-चीफ़] हिन्द के हो गए थे, चीफ़ कमिश्नर हो कर अण्डमान को तशरीफ़ लाए। इसी साहब के समय में लॉर्ड मेयो साहब बहादुर की आज्ञानुसार, पोर्ट ब्लेयर में भंडारा का

खाना क़ैदियों के वास्ते मुक़र्रर हुआ। लॉर्ड मेयो साहब का बनाया हुआ वो क़ानून भी जारी हुआ जिस से पोर्ट ब्लेयर की क़ैद हिन्द और विलायत के जेलख़ानों से भी ज़्यादा सख़्त हो गई। 8 फ़रवरी सन 1872 ईसवी को लार्ड मेयो साहब का क़त्ल भी इस सुप्रिंडेंट के समय में हुआ, जिस की कहानी पाठकों के लिए संक्षिप्त में भेंट करता हूँ।

लॉर्ड मेयो साहब बहादुर 8 फ़रवरी सन 1872 ईसवी को सात बजे के बाद समेत चार अगबनोटों के, जज़ीरा-ए-अण्डमान में रौनक़अफ़रोज़ [शोभा बढ़ाते हुए उपस्थित] हुए। असंख्य साहब लोग और मेम, हज़ा टापू की सैर के लिए लॉर्ड साहब के साथ थे। आठ बजे के बाद गवर्नर साहब कुछ हमराहियों समेत ख़ुद जहाज़ से उतर कर रॉस टापू में, जो पोर्ट ब्लेयर का मुख्यालय है, गरिमा के साथ उपस्थित हुए। उतरने के वक़्त 21 ज़र्ब [चोट] तोप की सलामी हुई। उस वक़्त हज़ारों मर्द-औरत, आज़ाद क़ैदी इस नज़ारे के वास्ते रॉस टापू के घाट पर हाज़िर थे। लॉर्ड साहब बहादुर ने टापू में उतरने के साथ ही बाज़ार रॉस आइलैण्ड [द्वीप] की तरफ़ ध्यान दिया और इस्कूल व बाज़ार व हस्पताल व बैरकों के क़ैदियों व बैरकों की सशस्त्र पल्टन का निरीक्षण कर के चीफ़ कमिश्नर साहब अण्डमान के बंगले पर तशरीफ़ ले गए। वहाँ भोजन आदि खा कर और थोड़ा आराम कर के गोरा बारक का निरीक्षण किया और फिर अपने अगबनोट को देखते हुए वीपर आइलैण्ड [द्वीप] को, जहाँ बदमाश क़ैदी जेल में रहते हैं, शरफ़अफ़ज़ा हुए और निरीक्षण के बाद वीपर के चाटम [Chatham] को वापिस आए। चाटम से माउंट हैरियट को तशरीफ़ ले गए। प्रावेट सेकरेटरी और चीफ़ कमिश्नर साहब ने बवजह शाम और ग़ैरवक़्त हो जाने के, उस दिन माउंट हैरियट को जाने से बहुत हठ से मना किया लेकिन लॉर्ड साहब ने न माना और चाटम से सवार हो कर होटियोन में पहुँचे, जो माउंट हैरियट परबत के क़दमों में आबाद है। वहाँ से टट्टू पर सवार हो कर पहाड़ गए। अब वक़्त सूरज डूबने का आ गया था। लॉर्ड साहब ने वहाँ बैठ कर समंदर में सूरज डूबने का तमाशा देखा और फ़रमाया कि ऐसा ख़ूबसूरत नज़ारा मैंने अपनी सारी उम्र में कभी नहीं देखा।

जब अंधेरा हो गया तो मश्अलों की रोशनी में नीचे उतरे। उस वक़्त पुलिस का एक सशस्त्र समूह लॉर्ड साहब के चारों तरफ़ था और वे चीफ़ कमिश्नर साहब और प्रावेट सेक्रटरी लॉर्ड साहब के दाहिने-बाएँ, बदन से बदन मिलाए हुए चलते थे और दूसरे अफ़सर उन के पीछे-पीछे थे। जब घाट पर, एक गाड़ी के नज़दीक पहुँचे जो वहाँ उस दिन खड़ी थी, चीफ़ कमिश्नर साहब लार्ड साहब से इज़ाज़त ले कर किसी ज़रूरत के वास्ते पीछे को हट गए और लॉर्ड साहब समेत प्रावेट सेक्रटरी आहिस्ता-आहिस्ता चले जाते थे। उस वक़्त इस गाड़ी की आड़ में से एक आदमी ने मिस्ल शेर की तरह कूद कर लॉर्ड साहब को दो ज़ख़्म भरपूर एक

छुरी से ऐसे लगाए कि वो लड़खड़ा कर समंदर में जा पड़े। उस गड़बड़ में मश्अलें भी सब गुल हो गईं। एक दूसरे क़ैदी ने जुर्रत कर के क़ातिल को पकड़ लिया वरना वो और दो-चार को मारता। लॉर्ड साहब को समंदर से निकाला और उसी गाड़ी पर पड़ाया गया। वो तो एक दो बात कर के अमरत्व के मुल्क के राही हुए। जब क़ातिल से पूछा कि तुम ने ये काम किस वास्ते किया, उस ने कहा कि मैंने ख़ुदा के हुक्म से किया है। फिर पूछा कि तुम्हारा कोई साथी, सहायक है तो जवाब दिया कि ख़ुदा मेरा शरीक है। हाई कोर्ट बंगाल की तरफ़ से नियमबद्ध जाँच की मंज़ूरी के बाद, क़ातिल को फाँसी का हुक्म हुआ। ये क़ातिल शेर अली नाम, ज़िला पेशावर का एक पहाड़ी अफ़ग़ान था। उस ने कहा कि सन 69 से मेरा इरादा था कि किसी बड़े अंग्रेज़ अफ़सर को मारूँगा, इसी वास्ते चन्द साल से मैंने छुरा तैयार कर के रखा था। जब 8 फ़रवरी को लॉर्ड साहब आए और उन की सलामी हुई तो मैंने दोबारा इस छुरे को तेज़ किया। मैं तमाम दिन इस ताक में रहा कि मैं किसी तरह उस टापू में पहुँचूँ जहाँ लॉर्ड साहब फिरते हुए मुझ को मिलें मगर मुझ को वहाँ जाने की रुख़्सत न मिली। तक़दीर कि शाम के वक़्त जब मैं मायूस हो गया था, लॉर्ड साहब को मेरे घर ले आए। मैं पहाड़ी पर भी लॉर्ड साहब की साथ गया था और साथ ही वापिस आया मगर जाने और आने में और पहाड़ के ऊपर कहीं मुझ को ऐसा मौक़ा नहीं मिला। तब मैं इस गाड़ी की आड़ में आन कर छिप रहा। यहाँ से मेरी दिल की इच्छा पूरी हो गई।

ये शख़्स कमज़ोर, काली चमड़ी और छोटे क़द का कुरूप आदमी था मगर बड़ा शहरोज़ और दिलेर था। फाँसी पड़ने के वक़्त तक वो कुछ निराश, भयभीत नहीं हुआ। फाँसी के ऊपर चढ़ कर उस ने बआवाज़-ए-बुलंद क़ैदियों की तरफ़ मुख़ातिब हो कर कहा कि भाइयों, मैंने तुम्हारे दुश्मन को मार डाला और तुम गवाह रहो के मैं मुसलमान हूँ - और फिर कलमा पढ़ने लगा और कलमा पढ़ते-पढ़ते ही उस की जान जिस्म से परवाज़ कर गई और वो अपने आ'माल [आचार-व्यवहार] की सज़ा को पहुँचा।

ये घटना क़त्ल लॉर्ड साहब की, एक ऐसे अदना क़ैदी के हाथ से होना क़ुदरत-ए-इलाही का एक नमूना था, वरना कहाँ गंगवा तेली और कहाँ राजा भोज। जब मौत आयी तो वो अनगिनत मुहाफ़िज़ [रक्षक] कोचों वाले और वह अनगिनत हथियारबंद पुलिस वाले और वो बन्दोबस्त और ख़बरदारियाँ कुछ काम न आईं। वो जो चाहता है सो करता है, किसी को उस की क़ुदरत में दख़ल नहीं। इस से एक महीना पहले एक दूसरे पेशावरी अफ़ग़ान ने चीफ़ जस्टिस नार्मन साहब को इसी तरह कलकत्ते में छुरी से मार डाला था। अब चाहिए था कि पागलपन से भरी और भयानक घटनाओं के बाद, अंग्रेज़ पठानों के दुश्मन हो जाते। सो मैंने देखा कि पहले से दो-चन्द पठानों की ख़ातिरदारी साहब लोग करने लगे। मगर बजाए

अफ़ग़ानों के, बदनसीब वहाबियों के और ज़्यादा दुश्मन हो गये तो मैंने समझा कि मारने वाले से हर कोई डरता है और ग़रीब पर हर कोई शेर हो जाता है।

इस से ज़्यादा तअज्जुब [अचम्भा] हम को उस वक़्त हुआ कि जब लॉर्ड साहब के क़त्ल की इस घटना के बाद, लम्पट साहब कमिश्नर पुलिस कलकत्ता और लाला ईशरी परशाद हमारे पुराने दोस्त, जो पहले हम ग़रीबों पर गपशप लगा कर सारजन से डिप्टी कलेक्टर हो गए थे और चन्द दूसरे नामी नामी अफ़सर पुलिस हिन्दिया, बेड़ा उठा कर पोर्ट ब्लेयर में पहुँचे कि हम इस मुक़द्दमे में वहाबियों को ज़रूर फंसा देवेंगे। मगर अल्लाह की मेहरबानी से उस वक़्त पोर्ट ब्लेयर में जनरल इस्टवार्ट [स्टुअर्ट] साहब और पराथ्रू साहब वग़ैरा ऐसे होशियार और हमारे हालात और चलन और इस क़त्ल की कैफ़ीयत और क़ातिल के हाल से बख़ूबी वाक़िफ़ सचेत बुद्धि वाले अफ़सर मौजूद थे। इस सबब से इस बार ईशरी परशाद का शिकार ख़ाली गया वरना उस ने तो पोर्ट ब्लेयर में पहुँचते ही पहले की तरह झूठे गवाह बनाने शुरू कर दिए थे। मगर जनरल इस्टवार्ट साहब ने कहा कि हम इन वहाबियों से बख़ूबी वाक़िफ़ हैं और ऐसी नाजायज़ कारवाई हम अपने इलाक़े में न होने देवेंगे। इस सबब से उस रब्ब-उल-इज़्ज़त ने इस आकस्मिक आफ़त से हम को महफ़ूज़ [सुरक्षित] रखा और जो असल मुजरिम था, सज़ा पा गया।

अंग्रेज़ी सीखना और उस के लाभ-हानि-असर

पोर्ट ब्लेयर में पहुँच कर भी लॉर्ड मेयो के क़त्ल की घटना तक, मैं अंग्रेज़ी ज़बान का जानकार न था। उन्हीं दिनों में राम स्वरूप नाम के एक अंग्रेज़ी जानने वाले की लालच से एक बरस की मेहनत में मुझ को अंग्रेज़ी बोलने और लिखने-पढ़ने में ख़ूब महारत हो गई। चूंकि मैं साहब लोगों को अपनी फ़ुरसत के वक़्तों में फ़ारसी, उर्दू, नागरी वग़ैरा ज़बानें सिखलाया करता था, उन की साथ रात-दिन बातचीत रहने और उन के सबक़ों को अंग्रेज़ी में अनुवाद कर के समझाने और उन के लिखित अनुवादों को सही करने के सबब से रोज़ बरोज़ अंग्रेज़ी में मेरी योग्यता बढ़ चली और वहाँ उस वक़्त तक लिखने वालों की कमी की वजह से, सरकारी कर्मचारियों को अर्ज़ियों व अपीलनवीसी की भी मनाही न थी। फिर मैंने अर्ज़ी व अपील भी अंग्रेज़ी ज़बान में लिखने शुरू कर दिए जिस में ज्ञान की क़ाबिलियत में उन्नति के अलावा, हज़ारों रुपए का फ़ायदा भी मुझ को हुआ था। वो पेशे यानी साहिब लोगों की अध्यापकी और अर्ज़ियाँ लिखने का काम था, जिस में मुझ को 100 रुपए माहवार से कम न मिलता था और चूंकि मेरे सिवाए वहाँ कोई मुसलमान अंग्रेज़ीख़्वाँ न था, मैंने बड़े-बड़े अहम मुक़द्दमों में इस्लाम से जुड़े लोगों को हमेशा बड़ी-बड़ी मदद दी और बड़ी-बड़ी आफ़तें और इलज़ाम मुसलमानों पर से टलवा दिए। इस इल्म [ज्ञान] के ज़रिए से मैंने

लोगों को बहुत नफ़ा पहुँचाया जिस को मुद्दत तक वहाँ के लोग भूल न जावेंगे और जिन लोगों की फाँसियाँ मेरी अंग्रेज़ीदानी से रद्द हुईं और जान बच गई, वो तो ज़िन्दगी भर इस एहसान को भूलेंगे नहीं।

ये बात भी एक बड़े हैरत की है कि जिस दिन मेरी रिहाई का हुक्म पहुँच कर प्रचारित हुआ, उसी दिन सरकारी कर्मचारियों को अर्ज़ियों का लिखना भी क़तई मना हो गया, कि सरकारी कर्मचारियों के फ़ायदे की वो ख़ास इजाज़त, अल्लाह की मेहरबानी से, रास्ता दिखाने के लिए नियुक्त दूसरे ख़लीफ़ा की तरह, मेरी ही ज़ात के वास्ते थी। अब अगर सरकार का कोई मुलाज़िम भूले से भी अर्ज़ी लिख देवे तो उसी दिन अपने औहदे से बरख़ास्त हो जावे।

मैंने अंग्रेज़ी सीख कर बड़े-बड़े क़ुतुबख़ानों [पुस्तकालयों] की सैर की और हर इल्म और हुनर की अनगिनत किताबें देखीं। दुनिया की कोई ज़बान ऐसी न होगी जिस की सिर्फ़ व्याकरण अंग्रेज़ों ने न लिखी हो और कोई मुल्क ऐसा न होगा जिस का इतिहास बहुत व्याख्या और विवरण के साथ अंग्रेज़ी ज़बान में न हो। अंग्रेज़ी ज़बान विद्या और कलाओं का घर है, जो अंग्रेज़ी नहीं जानता वो बेशक दुनिया के हालात से अच्छी तरह माहिर नहीं है और बिना अंग्रेज़ी सीखे पक्का दुनियादार व तर्रार [मुखर] नहीं हो सकता और न ही सिवाए इस ज़बान के, आजकल कोई बढ़िया औज़ार धन कमाने का है। मगर जिस क़द्र ये ज़बान दुनयवी फ़ायदों से भरी हुई है, उस से ज़्यादा दीन [धर्म] के वास्ते हानिकर बल्कि क़ातिल ज़हर है। कोई जवान लड़का जिस ने पहले क़ुरान और हदीस [पैग़म्बर मुहम्मद साहब की कही बात] और पैग़म्बरी की राह के बरताव में ख़ूब महारत और अभ्यास न कर लिया हो, अगर इस ज़बान को सीख कर मेरी तरह हर क़िस्म और हर इल्म की किताबों का अध्ययन किया करेगा, ज़रूर परले सिरे का बेहद आज़ाद बददीन, बेअदब, विधर्मी, बल्कि शराबी और बदचलन हो जावेगा और ऐसा बेदीन और बदचलन होगा कि जिस का सँवरना मुहाल क्या, बल्कि मुमकिन नहीं है। मगर सिर्फ़ थोड़ी सी ज़बान अंग्रेज़ी का सीखना इतना हानिकर न होगा।

अब बावजूद मेरी इस दीनदारी [धार्मिकता] के, पहले मेरा ही हाल सुन लीजिए कि इस इल्म [ज्ञान] की बदौलत मुझ पर क्या-क्या असर हुए। जो मेरी साथ पोर्ट ब्लेयर में रहे हैं उन पर ये बात गुप्त न होगी कि इसी इल्म की बदौलत मेरी नमाज़ तहज्जुद [आधी रात के बाद की नमाज़] जिस का मैं बचपन से आदी था, बिल्कुल सिरे से छूट गयी थी। रात को आदत के मुताबिक़ ख़ुद मैं जाग पड़ता था मगर दो बजे शब [रात] से फ़ज्र [भोर] तक चारपाई पर बैठा रहता। हरगिज़ हिम्मत न होती कि उठ कर वज़ू करूँ [शुद्धि के लिए हाथ-

पाँव धोऊँ] या नमाज़ पढ़ूँ। न जुम्अ [शुक्रवार] में, न जमाअत [समूह] में शामिल होता, न क़ुरान-हदीस पढ़ने और सुनने को आकर्षित होता। हर वक़्त अंग्रेज़ी किताब देखने को दिल चाहता। कोई घड़ी अंग्रेज़ी किताब पढ़ने से ख़ाली न रहता। रमज़ान भर में चाहता रहता कि क़ुरान पढ़ूँ और क़ुरान मजीद [पवित्र और पूज्य क़ुरान] खोल कर पढ़ने को भी बैठता मगर पढ़ा न जाता। ज़ुबान पर ताला लग जाता था। जो दुआएँ हाथ उठा कर घंटों तक मांगा करता था, अब इस छल में ये हालत हो गई थी कि हाथ उठा कर चार कलमा [वाक्य] भी ज़बान से अदा न होते थे। हाथ ख़ुद-ब-ख़ुद नीचे गिर जाते थे। इन दिनों में केवल पाँच वक़्त की अनिवार्य नमाज़ मैं पढ़ा करता था और उस का अदा करना भी पहाड़ से ज़्यादा सख़्त था। क़रीब था कि मैं फ़र्ज़ नमाज़ रोज़ा को भी जवाब दे दूँ और उस के छोड़ देने और निरर्थक, बेकार होने की दलीलों की शिक्षा ही शैतान मुझ को दिया करता था। क़ुरान मजीद एक-तिहाई मुझ को कंठस्थ था, उस में से सिर्फ़ आख़िर की चार-पांच सूरतें [अध्याय] याद रह गई थीं और बाक़ी सब भूल गया था। हज़रत मुहम्मद के असंख्य कथन भी मुझे कंठस्थ थे, वो भी गोया दिल से किसी ने धो डाले थे।

रोज़-ब-रोज़ इन बुरे मतों, विश्वासों और बुरे, निकृष्ट आचार-व्यवहार से दिल पर रंग पर रंग जमता चला जाता था और यहाँ तक मेरा दिल रोगी और मरीज़ हो गया था कि उस पर दम टूटने की हालत थी। उस पर भी ख़ूबी ये, कि उस हालत में भी शैतान ऐसे ऐसे कारण मेरे दिल पर अंकित किया करता था कि मैं अपनी उस हालत को भी सब से बेहतर जानता और समझता था कि बस इस्लाम के प्रमुख धर्मवाक्य, 'केवल अल्लाह ही इबादत करने योग्य है' का वचन ही स्वर्ग पाने के लिए काफ़ी है, इस्लामी क़ानून के तहत ये तकलीफ़ें सब बेफ़ायदा हैं। और यह भी मुझ को याद है कि कभी-कभी परमात्मा से इन्कार, जो शैतान का असल मतलब है, वह भी अनायास मन में डाला करता था। और जब कभी मैं विधर्मियों और नास्तिकों की दलीलों को देखता तो चाहे-न चाहे दिल उन को क़ुबूल करना चाहता। ग़रज़ मुझ में और कुफ्र [इस्लाम की आज्ञाओं के विरुद्ध आचरण] में केवल कुछ उंगलियों का फ़र्क़ बाक़ी था। क़रीब था कि मैं उस में गिर जाऊँ और ये कैफ़ीयत [हालत] कोई एक-दो दिन नहीं रही, छः सात बरस रही मगर अनादि काल से पवित्र किए जाने की वजह से या पूर्व समय में किसी अच्छे आचार-व्यवहार से, मैं किसी किसी समय अपने को घातक या बहुत अधिक काला और गुमराह समझ कर ये दुआ भी उर्दू ज़बान में माँगा करता था कि ऐ अखियाँ वाले, मुझ अंधे का हाथ पकड़।

आख़िर ईश्वरीय शिक्षा और परवरिश ने फिर जोश मारा कि दिसम्बर 1880 ई0 में ये ख़ाकसार यकबयक [अचानक] जांघ पर निकले एक फोड़े के रोग से बहुत बीमार हुआ,

खाना-पीना सब छोड़ गया। डेढ़ महीने तक उस से सेरों पीप जारी रही। पाँच हफ़्ते तक हस्पताल में पड़ा रहा। मरने में कोई कसर बाक़ी न रही थी। दोस्त-आश्ना [परिचित] सब मायूस हो गए थे। उस बीमारी की हालत में ये ख़ाकसार बहुत गिड़गिड़ाया और अपनी बीते समय की हालत से लज्जित हो कर पूरा-पूरा तौबा करने वाला हुआ और प्रतिज्ञा ली कि इस रोग से मुक्त होते ही नमाज़ तहज्जुद [आधी रात के बाद की नमाज़] भी फिर शुरू कर दूँगा और क़ुरान व हदीस का अध्ययन किया करूँगा। मुझ को उसी वक़्त दुआ स्वीकार किए जाने के आसार मालूम हो गए और उसी घड़ी से दिल की हालत पलट गई। अल्लाह की मेहरबानी और शिक्षा तथा परवरिश के लक्षण प्रकट होने लगे। भूला हुआ क़ुरान और हज़रत मुहम्मद की वाणी और मुहर्रम की दसवीं तारीख़ को की जाने वाली प्रार्थना आप से आप याद होने लग गई। नमाज़ और दुआएँ, लज़्ज़त और हलावत [आनन्द और मिठास] पाने लगा। तब मैं समझा कि ये बीमारी सिर्फ़ मेरे सुधार और शिक्षा के वास्ते ही थी।

हस्पताल से वापस आन कर मैंने फिर नए सिरे से हदीस और तफ़्सीर [हज़रत मुहम्मद के कथन तथा क़ुरान की टीका] पढ़ना शुरू कर दिया और थोड़े ही अर्से में मेरी हालत पहले से भी अच्छी हो गई। फिर मैंने ख़याल कर के देखा कि जिस क़ुरान व हदीस के पढ़ने से तबीयत घबराती थी और ज़बान पर ताला लग जाता था और एक-दो आयत [क़ुरान के वाक्य] पढ़ना भी मुहाल और दुश्वार था, वह अब मैं दिन भर बैठ कर पढ़ता हूँ और उस के पढ़ने से तबीयत को सरूर और दिल को लज़्ज़त होती है और वो दुआ जिस के वास्ते हाथ उठाना मुहाल था, अब घण्टों मांगने से भी तबीयत सेर [तृप्त] नहीं होती। इस से मालूम हुआ कि पूजा-उपासना की सामर्थ्य और शक्ति देना, ये भी अल्लाह की मेहरबानी है, जिस को चाहे देवे और जिस को चाहे न देवे।

अंग्रेज़ों द्वारा वहाबियों का दमन

जो आग वहाबियों की गिरफ़्तारी पर सन 63 में थानेसर में रोशन हुई थी, उस को रोज़-ब-रोज़ तरक़्क़ी होती गई। ख़ुद हमारे मुसलमान और हिन्दू भाई बजाए बुझाने के, उस में और तेल और तारपीन डाल कर ज़्यादा बढ़ाते गए। आख़िर को डॉक्टर हंटर साहब ने तो हज़ारों मन विलायती बारूद और केरोसीन उस में डाल दिया - हमारी सरकार को यहाँ तक भड़काया कि सादक़पुर पटना के वह मकानात जिन में क़ाफ़िले के लोग ठहरा करते थे, मकानों में रहने वालों और इन फ़र्ज़ी बाग़ियों समेत, खुदवा कर फेंकवा दिए मगर इस पर भी सरकार का दिल ठण्डा न हुआ। सन 1872 ईसवी के आख़िर तक पटना और बंगाल में बेगुनाहों की गिरफ़्तारी के सिलसिले को जारी रखा। बेचारा अमीर ख़ान चमड़े का सौदागर और मौलवी तबारक अली वग़ैरा बहुत से आदमी पटना में पकड़ लिए। मौलवी अमीरुदीन

साहब को मालदा में जा पकड़ा और एक बूढ़े और ज़ईफ़ शख़्स इब्राहिम मंडल को इस्लामपुर में, और अपने मामूली और पुराने गवाहों से जो चाहा गवाही दिलवा कर बेचारों को काले पानी को रवाना किया और अमीर ख़ान की चन्द करोड़ की जायदाद से अपना कुल ख़र्चा पूरा कर लिया, हालाँकि इस अमीर ख़ान को आजीवन कारावास के बावजूद, चार बरस बाद गोरमेंट ने एहसान रख के छोड़ दिया। मगर चार बरस पहले अगर इल्ज़ाम से बरी हो कर छूट जाता तो अपनी करोड़ों की ज़ब्त कर ली गई जायदाद भी सरकार से वापिस ले लेता।

मार्च सन 1872 ईसवी में मौलवी तबारक अली साहब और मौलवी अमीरुदीन साहब भी हमारे पास काले पानी में पहुँचे मगर नए, सख़्त क़ानून जारी होने की वजह से बेचारों को मुद्दत तक सख़्त मशक़्क़त करनी पड़ी। लेकिन अल्लाह की मेहरबानी से कुछ अरसे बाद मौलवी तबारक अली साहब स्टेशन लिपिक और मौलवी अमीरुदीन साहब मदरसा अध्यापक मुक़र्रर [नियुक्त] हो गए और सिर्फ़ दस बरस काटने के बाद लॉर्ड रिपन की मेहरबानी और परोपकार से हमारे साथ ही रिहा हो कर अपने-अपने घर को वापिस आ गए और वो उन की सख़्त क़ैद के समयकाल की क़ैद में से कट कर, क़ैद का समयकाल कम हो कर, हमारे बराबर हो गए।

जब दस बरस तक भी ये गिरफ़्तारियों और पकड़-धकड़ का सिलसिला बन्द न हुआ तो मैं अपने बुरे आचार-व्यवहार को याद कर के बहुत कुढ़हा करता था कि ये आग तेरे घर से निकली और तेरे दुराचार के सबब से दस बरस से तमाम हिन्द में हज़ारों विद्वज्जन और शरीफ़ लोग मुसीबत के पंजे में गिरफ़्तार हैं। अगर तुझ सा मनहूस बदक़िस्मत न पैदा हुआ होता या बचपन ही में मर जाता तो ये आफ़त और मुसीबत मुसलमानों पर न पड़ती।

चूअज़ क़ौमी यकीबे दानिशी कर्द

न केरा मंज़िलत मानद न महरा

[जो अपनी क़ौम से कुछ सम्बन्ध न रखे, उसे न कोई मंज़िल (गंतव्य) मिलती है और न कोई सहारा]

मार्च सन 1872 ईसवी में उसी जहाज़ में जिस में मौलवी तबारक अली और मौलवी अमीरुद्दीन साहब आए थे, मियाँ अब्दुल गफ़्फ़ार की बीबी और उन के दो लड़के भी बहुक्म सरकार काले पानी में पहुँचे। मियाँ अब्दुल ग़फ़्फ़ार ने बज़रिया चीफ़ कमिश्नर पोर्ट ब्लेयर के, सरकार से दरख़्वास्त की थी कि मेरी बीवी और बच्चे हिन्द से बुला दिए जावें। सौ-सौ धन्यवाद बंगाल गवर्नमेंट पर कि उस ने अपने ख़र्च से ऐसे बाग़ी के जोरू और बच्चों को

काले पानी में पहुँचवा दिया। अगर धार्मिक पक्षपातियों को ये ख़बर हो जाती तो वो इस ग़म से मालूम नहीं काले दाने खा लेते।

दमन का उल्टा असर

सरकार का ये ग़ुस्सा और वहाबियों को धड़ाधड़ दस बरस तक बाढ़ से कटी भूमि की तरह नष्ट करने से ग़रज़ यह थी कि वहाबियों का ख़ात्मा हिन्द से किया जावे, उन का बीज नास हो जावे। सो मैंने काले पानी से वापिस आन कर इस के बरअक्स [उलट] देखा। हिन्द में मेरी मौजूदगी के वक़्त शायद पंजाब भर में दस वहाबी विश्वास के मुसलमान भी मौजूद न थे। अब देखता हूँ कि कोई गाँव और शहर ऐसा नहीं है कि जहाँ के मुसलमानों में कम से कम चौथा हिस्सा वहाबी न हों। दिन प्रतिदिन ये फ़िर्क़ा [सम्प्रदाय] ऐसा बढ़ रहा है जैसे एक वक़्त प्रोटस्टेंट यक-ब-यक तमाम यूरोप में बढ़ गए थे और कोई अज़ाब [कष्ट] और शिकंजाकशी और सूली और फाँसी व जलावतनी [देश निकाला] और आग में ज़िन्दों को जला देना उन की तरक़्क़ी को रोकने वाला न हुआ था। बल्कि तजुर्बों से मालूम होता है कि किसी फ़िर्क़े की तरक़्क़ी को रोकना और उस में अत्याचार करना, उस की तरक़्क़ी व प्रतिष्ठा और वैभव का सब से ज़्यादा बलवान सबब होता है। दूर क्यों जाओ, थोड़े दिन की बात है कि जब सिखों का फ़िर्क़ा [सम्प्रदाय] निकला और उस की तरक़्क़ी शुरू हुई, मुग़लों ने किसी क़द्र उस की बरबादी करने के इलाज किए मगर ख़ुदा के बढ़ाए हुए को कौन रोक सकता है? आख़िर वही सिख हैं जिन्होंने पेशावर से देहली तक मुग़लों की सल्तनत छीन ली और 100 बरस तक बड़े जलाल और इक़बाल [प्रताप] से राज किया। उधर दक्खन में मरहटों का ये ही हाल समझो, जितना रोका वितना ही बढ़ते गए। अल्लाह तआला [ईश्वर महान] की पूर्ण बुद्धिमता में हस्तक्षेप करना अपने को हलाक करने [मारने] का सामान है।

सन्तानें

12 अप्रैल सन 72 ईसवी को मेरी बड़ी लड़की ख़ैरुंनिसा पैदा हुई। इस के अक़ीक़ा [नामकरण संस्कार] का खाना भी बड़ी धूमधाम से हुआ था और मौलवी तबारक अली साहब और मौलवी अमीरुदीन साहब, जिन को वहाँ पहुँच कर पन्द्रह दिन ही हुए थे, इस अक़ीक़ा में शामिल थे। इस के बाद मेरी दूसरी लड़की अहमदी ख़ानम पैदा हुई। मारे मुहब्बत के उस का नाम मैंने अपनी हिंदुस्तान की लड़की के नाम पर रखा था। इस के नामकरण संस्कार का खाना भी वैसा ही धूमधाम से हुआ। इस के बाद फिर तीसरा बच्चा मुहम्मद सादिक़ 26 नवम्बर सन 75 को पैदा हुआ। इस का नाम भी मैंने अपने हिंदुस्तानी लड़के के नाम पर रखा था। इस लड़के की पैदाइश के वक़्त ख़ुदा का एक अजीब इसरार [आग्रह] जो

शायद मेरी तसल्ली के वास्ते था, ज़ाहिर हुआ। जिस दिन ये लड़का काले पानी में पैदा हुआ, उसी दिन बल्कि उसी वक़्त मेरा बड़ा लड़का मुहम्मद सादिक़ पानीपत में फ़ौत हो [गुज़र] गया। जब उस की वफ़ात [मृत्यु] की ख़बर मुझ को पहुँची, मैंने उस के बदले में उसी का हमनाम अपने पास देख कर सब्र शुक्र किया और उस की वालिदा [माता] को भी उस का नेमलबदल और हमनाम मिल जाने की ख़बर लिख भेजी मगर शान-ए-इलाही [अल्लाह की शान], कि डेढ़ बरस का हो कर ये मुहम्मद सादिक़ सानी [द्वितीय] भी 10 जून सन 77 को मर गया। मगर उस के बाद तीन लड़की और दो लड़के और मुझ को इनायत हुए जो इस वक़्त तक अल्लाह की मेहरबानी से ज़िन्दा और मेरे साथ हैं।

डॉक्टर हंटर की किताब और मुहम्मद शफ़ी का सरकारी गवाह होने का क़िस्सा

जब मैंने अंग्रेज़ी सीखी तो डॉक्टर हंटर साहब की किताब *आवर इंडियन मुसलमान* के देखने का बड़ा शौक़ हुआ। बमुश्किल तमाम कलकत्ता से 7 रुपए क़ीमत की एक जिल्द दूसरे मुद्रण/संस्करण की मैंने मंगवाई और उस का अध्ययन किया तो एक जगह पर देखा कि उक्त डॉक्टर साहब ने बड़ी लम्बी-चौड़ी तमहीद [भूमिका, प्रस्तावना] और तवातो बांध कर [निरंतरता में] लिखा है कि अगर शाही सरकार राजाओं की तरह कभी इन वहाबियों को काले पानी से रिहाई भी देवे तो ये लोग अपनी रिहाई को अल्लाह की ओर से समझ कर हिन्द को वापिस आने के बाद और ज़्यादा अंग्रेज़ी सल्तनत को बिगाड़ने और उस की बर्बादी का और भी अधिक कारण बनेंगे। पहले ही सरकार का ग़ुस्सा देख कर हम रिहाई से हाथ धोए बैठे थे। ये ज़हर मिला हुआ निबन्ध देख कर रही सही उम्मीद भी जाती रही और इस के बाद जब गौरमेंट हिन्द ने आजीवन कारावास के क़ैदियों का बीस बरस का समय पूरा होने पर रिहाई की नियमावली जारी की तो उस में भी हमारा मुक़द्दमा रिहाई से विमुक्त हो गया था। और इन सब से बढ़ कर नाउम्मीदी उस वक़्त हुई थी जब सन 1881 ईसवी में उल्लिखित किताब के सम्पादक ख़ुद डॉक्टर हंटर साहब गवर्नर जर्नल हिन्द के परामर्शदाता नियुक्त हो गए। तब हम ने जाना कि जिस की किताब को एक दफ़ा अध्ययन कर के बड़े से बड़ा दाना [बुद्धिमान] अंग्रेज़ सारी उम्र के वास्ते हमारा दुश्मन जानी हो जाता है तो महक़मा-ए-गवर्नरी में उन की मौजूदगी रिहाई तो क्या, कौन जाने हम पर और क्या आफ़त लावेगी। लेकिन बाऐना हुमा [ठीक उसी तरह जैसे हुमा नामक पक्षी की छाया पड़ने से मनुष्य राजा हो जाता है] सन 1881 ईसवी से दैवी शक्ति दिल को सचेत करती थी कि हम जल्द रिहा हो कर हिन्द को जाने वाले हैं। मैंने मौलवी अनवार-उल-सलाम और हाफ़िज़ सआद अकबर पानीपती को ख़तूत भी लिख दिए थे कि मैं जल्द हिन्द को आया चाहता हूँ।

एक दूसरी बात उक्त किताब के अध्ययन से और मालूम हुई थी कि उक्त लेखक ने ऊपर ज़िक्र में आई किताब के सफ़ा 215 में लिखा है कि "इन दिनों में जो शिमला में रहते हुए ये किताब लिख रहा हूँ, मुहम्मद शफ़ी बमुक़ाम पटना अपने मज़हबी भाइयों पर सरकार का गवाह हो कर उन को क़ैद करा रहा है और ये वो मुहम्मद शफ़ी है जिस को सन 1864 ईसवी में अदालत अम्बाला से फाँसी देने का हुक्म हुआ था। अगर उस वक़्त उस को फाँसी पड़ जाती तो आज हज़ारों मुसलमान उस को शहीद मर्द समझ कर उस की क़ब्र को पूजते और दूर-दूर से ज़ियारत [दर्शन] को आते मगर आज वही शहीद मर्द सरकारी गवाह हो कर अपने धार्मिक और सहविश्वासी भाइयों को बड़ी कोशिश से फंसा रहा है फ़क़त [केवल]।" ये लिखना डॉक्टर साहब का कुछ मुहम्मद शफ़ी ही पर नहीं बल्कि कुल मुसलमानों पर कटाक्ष जैसा है। सो ये ता'न [कटाक्ष] अलावा मुहम्मद शफ़ी के दूसरे मुसलमानों पर या मज़हब इस्लाम पर क़ायम नहीं हो सकता। कुल मुसलमानों में से एक मैं ही हूँ, मुझ को गवाह क्यों न बना लिया? पार्सन साहब ने दिसम्बर सन 1863 में मेरे गवाह बनाने को कोई कोशिश उठा न रखी थी मगर मैं उन को बच्चों का खेल समझता था और इस वक़्त तक भी मेरा ये हौसला है कि मुसलमान तो दरकिनार, मैं अपनी जान दे देने को इस से लाख दर्जे बेहतर जानता हूँ कि किसी हिन्दू या क्रिस्टान [ईसाई] को फंसा कर अपनी जान बचा लूँ। इस बात में हम डॉक्टर साहब की राय के सहमत हैं कि दीनदार और जवाँमर्दों का वह काम नहीं है जो मुहम्मद शफ़ी से घटित हुआ। वो ग़रीब मुसलमान जो मुहम्मद शफ़ी की गवाही से क़ैद हुए और उन के अपने रिश्तेदार, स्वजन क्या कहते होंगे? मुहम्मद शफ़ी इस नामर्दाना चाल से सरकारी क़ैद से तो तत्कालीन थोड़ी देर के लिए छुटकारा पाया मगर मौत के पंजे से तो न बच सका। आख़िर सन 1879 ईसवी में बमुक़ाम देहली मर गया और मैं जो गवाह न हुआ था इस वक़्त तक बा ऐश इशरत [भोग और आनन्द के साथ] ज़िन्दा दनदना रहा हूँ और इस वक़्त भी मेरे हज़ारों विरोधी हैं लेकिन मेरा बाल भी बींका नहीं कर सकते।

अलावा इस के, मुहम्मद शफ़ी वग़ैरा की सौ हद तक की बेहूदा हरकतें हज़रत ईसा मसीह (जिन को हमारा सलाम पहुँचे) के विशेष अनुयायी और सहचर जुडस इस्कैरियट से बढ़ कर नहीं हैं, जिस ने बिला धमकी, फाँसी और क़ैद के, यहूदियों से चन्द चांदी के सिक्के रिश्वत ले कर अपने धर्मगुरू हज़रत ईसा मसीह, जिन को हमारा सलाम पहुँचे, को पकड़वा दिया था हालाँकि यह यहूदा वो शख़्स है कि जिस के वास्ते सिर्फ़ शहादत ही नहीं बल्कि जन्नती होने की ख़ुशख़बरी भी हज़रत मसीह दे चुके थे।

अब इधर ज़रा देखिए चश्म-ए-इन्साफ़ [इन्साफ़ की आँख] खोल कर, ख़ुद हज़रत ईसा मसीह की उस कैफ़ीयत [हालत] को, के जब हज़रत मौसूफ़ [उक्त] स्वयं इस लेखक की

तरह क़ैद हो कर इम्तिहान में पड़े थे। यह लेखक एक तुच्छ अनुयायी, और हज़रत मुहम्मद के इस अनुयायी के हाल से समानता और मुक़ाबला कर के देखिए। इन्जील [बाइबल] में लिखा है कि उल्लिखित हज़रत ईसा मसीह अपनी मौत के आसार [लक्षण] देख कर ऐसे बदहवास हो गए थे कि मुँह के बल गिर पड़े और दुआ माँगने लगे कि ऐ मेरे बाप, अगर हो सके तो ये मौत मुझ से टाल दे और फ़ांसी पर चढ़ कर भी हज़रत मम्दूह [प्रशंसित] में ज़रा भी सब्र और इस्तिक़लाल [दृढ़ता] नहीं रहा था, डरपोकों की तरह ऐन फाँसी पर पुकारते थे कि ऐ मेरे ख़ुदा तूने मुझ को क्यों छोड़ दिया। अब इस के मुक़ाबिल इस अदना अनुयायी मुहम्मद सल्लल्लाह अलैहि वस्सलम द्वारा ख़ुदा की दी हुई दृढ़ता और सब्र को देखिए कि क़ैद में आ कर और पार्सन साहब की वह मार और कूट खा कर कि जिस के सुनने से बदन पर रोंगटे खड़े होते हैं, कभी सी भी नहीं किया और फाँसी का हुक्म सुन कर उस को वो ख़ुशी और फ़र्हत हुई थी कि शायद सातों महाद्वीप यानी पूरी दुनिया की सल्तनत के मिलने से भी ऐसी ख़ुशी न हुई होती। डॉक्टर हंटर साहब की किताब के सफ़ा 99 को पढ़ कर देखिए कि आख़िर वही ख़ुशी सम्पादक यानी ख़ुद इस लेखक की फाँसी का हुक्म रद्द होने के कारण हुई थी।

बिना इम्तिहान आदमी के ईमान और दृढ़ता की हालत मालूम नहीं ही सकती। अब जिस नबी [पैग़म्बर] के अदना उम्मतियों और अनुयायियों की ये कैफ़ीयत [हालत] है और दूसरी तरफ़ ख़ुद नबियों की वह हालात, इस से नाज़िरीन [पाठक] दोनों नबियों की प्रतिष्ठा और बुज़ुर्गी का अन्दाज़ा बख़ूबी कर सकते हैं। 'बेबीन तफ़ावुत-ए-रह अज़ कुजास्त ता बकुजा' – देखो दो रास्तों में फ़र्क़, कहाँ से कहाँ तक। गो मैं इस बाइबल के क़िस्से को इन नस्रानियों [इसाइयों] की एक बनावट और तहरीफ़ [किसी बात को कुछ का कुछ कर देना, लेख की जालसाज़ी] जानता हूँ मगर मुद्दई का ऐतराज़ दूर करने के वास्ते, यहाँ उस को नक़्ल कर के दलील दी गई है और दरअस्ल मुझ गुनहगार को हज़रत मसीह अलैहि सलाम से कुछ काह या कोह [तिनके या पर्वत] की भी बराबरी नहीं है। 'चे निस्बत ख़ाक रा बा आलम-ए-पाक' – मिट्टी को पवित्र दुनिया से क्या ताल्लुक। और हमारे क़ुरआन मजीद में अल्लाह रब्ब-उल-इज़्ज़त फ़रमाता है 'इन्नल लज़ीना फ़तनुलमोमेनीना वलमोमिनाते सुम्मा लम यतूबू फ़लहुम अज़ाब जहन्नमा व लहुम अज़ाबुलहरीक़' - जो शख़्स मुसलमान मर्दों और मुसलमान औरतों को तकलीफ़ में डाले और फिर दिल से तौबा करने वाला न होए तो उस के वास्ते अज़ाब दोज़ख़ का [नरक का पापकष्ट] और अज़ाब जलती आग का तैयार किया गया है। और मुझ को बहुत से विश्वस्त लोगों से मालूम हुआ कि मुहम्मद शफ़ी अपनी इस हरकत पर निहायत पशेमान [बहुत अधिक लज्जित] और रो-रो कर निश्छलता

से तौबा करने वाला हुआ। उस के बाद ऐसी सूरत में मुहम्मद शफ़ी 'वईदुन लम युतूबू' [जो वादा किया गया है तौबा न करने वालों से, अर्थात नरक का दण्ड] में दाख़िल नहीं होता और उस दोष छिपाने वाले और बहुत माफ़ करने वाले यानी अल्लाह से उम्मीद है कि उस को बख़्श देवे। अजी हुज़ूर, दीन-मज़हब की बहस को छोड़ो, दुनिया के बहादुर और वीर आदमी भी कभी ऐसी हरकत नहीं करते और उस को सख़्त नामर्दी और बड़ा ऐब जानते हैं।

उन सब घटनाओं को, जिन में ये ख़ाकसार पोर्ट ब्लेयर में अपने अस्थाई निवास के समय वक़्तन फ़ वक़्तन [समय समय पर] पक्षपात या दुश्मनों की दुश्मनी या ख़ुद अपनी असावधानी से फंस कर बार-बार ख़ुदा की मदद से बरी होता रहा और पक्षपात करने वाले दुश्मन शर्मिंदा होते गए, सविस्तार लिखना बड़ा लम्बा काम है। इस बीस बरस में हर फ़ज्र [सूर्योदय] से शाम तक बीसों घटनाएँ ऐसी आती थीं जिन में मैं ख़ुदा की मदद और ख़ुदा की दी हुई सुरक्षा को अपनी आँखों से देखा करता था। अब ऐसे इनामात [उपहारों] को, जो किसी शख़्स पर हर घड़ी बरसात की तरह बरस रहे हों, कहाँ तक लिख सकते।

हेड क्लर्की और रिहाई की कोशिशें और एक पुस्तक का प्रकाशन

जून 1876 ईसवी में ये ख़ाकसार मीरमुंशी [हेड क्लर्क] ज़िला जनूबी [दक्षिणी] पोर्ट ब्लेयर का मुक़र्रर हो कर अबरडीन को बदल गया और अपने पुराने आक़ा औऱ शागिर्द मेजर पराथ्रू साहब डिप्टी कमिश्नर का मीरमुंशी [हेड कलर्क] हुआ, जहाँ मैं अपनी रिहाई और रवानगी की तारीख़ तक बराबर उसी ओहदे पर रहा। उस साहब ने मेरी सहायता से पोर्ट ब्लेयर के आईन [विधान, क़ानून] की किताब भी बनाई जो बाद मंज़ूरी गौरमेंट के, प्रचारित और प्रसिद्ध भी हुई और उस का उर्दू तर्जुमा [अनुवाद] भी ख़ुद मैंने ही लिखा था और वह भी छप चुका है।

मेरे चौदह बरस के बढ़िया कारनामों, कार्यकुशलता और जान तोड़ कोशिशों पर ध्यान दिए जाने पर इसी साहब की कोशिश से गौरमेंट हिन्द को मेरी रिहाई की रिपोर्ट भी हुई थी। उस रिपोर्ट पर रिहाई तो क्या होनी थी मगर सेक्रेटरी होम डिपार्टमेंट इस क़द्र नाराज़ हुए कि मेरे ज़िन्दा रहने तक या अंग्रेज़ी शासन के रहने तक मेरी रिहाई ग़ैर मुमकिन, बल्कि मुहाल हो गई। इस रिहाई की नामंज़ूरी के बाद सन 1879 ईसवी में कुछ पदाधिकारियों और दोस्तों के निवेदन के अनुसार, मैंने *तारीख़-ए-अजीब* शीर्षक से अण्डमान टापुओं के इतिहास की पुस्तक लिखी थी जो सन 1880 ईसवी में लखनऊ स्थित छापाख़ाना नवल किशोर में छप भी गई। इस किताब के दो सौ नुस्ख़े मैंने ख़ुद खरीद कर स्थानीय कमिश्नरों और डिप्टी कमिश्नरान पंजाब और महकमा गवर्नरी हिन्द और लेफ़्टेन्ट गवर्नरी पंजाब और अपने अक्सर इनायतफ़र्माओं [कृपालुओं] और दोस्तों को बतौर यादगार रवाना किए और सब

को जतला दिया कि मैं निहायत ऐश आराम के साथ ज़िन्दा मौजूद और जल्द आने वाला हूँ।

अर्ज़ियाँ और दरख़्वास्तें और उन का हश्र

सन 1880 ईसवी के आख़िर में मौलवी अब्दुल रहीम साहब के पुत्र मौलवी अब्दुल फ़ताह अपने पिता की मुलाक़ात के वास्ते पोर्ट ब्लेयर में पहुँचे और कोई एक बरस तक वहाँ रह कर फिर हिन्द को वापिस चले गए। उस वक़्त मौलवी अब्दुल रहीम साहब ने एक अर्ज़ी का प्रारूप अपनी ख़ास रिहाई के वास्ते लिखवा कर अपने बेटे के ज़रिए से हिन्द को रवाना किया था कि वहाँ उस प्रारूप की एक अर्ज़ी उन की बीवी की तरफ़ से तैयार हो कर बहज़ूर गवर्नर जनरल हिन्द अप्रैल सन 1882 ई0 में पेश हुई, जिस में ये बयान था "कि मेरे शौहर [पति] पर दरअस्ल कुछ भारी क़ुसूर साबित न हुआ था, इस वास्ते मुक़द्दमे के फ़ैसले के वक़्त सेशन जज और चीफ़ कोर्ट ने भी ये हिदायत दी थी कि बशर्त नेकचलनी, बाद चौदह बरस के, अब्दुल रहीम के मुक़द्दमे को जाँचने के विचार से फिर से देखा जाएगा। सो अब तो अठारह बरस हो गए, मैंने उस की जुदाई में बहुत तकलीफ़ उठाई और वह भी बहुत बूढ़ा हो गया। सरकार अब उस को आदेशपत्र देखने के बाद रिहाई बख़्शे।" इस अर्ज़ी को देखने के बाद, लॉर्ड रिपन साहब बहादुर ने मुक़द्दमे के आदेशपत्र मंगवाने के अलावा, पंजाब और बंगाल गौरमेंट से राय भी तलब की कि अगर इन वहाबियों को रिहाई दी जावे तो कुछ बुराई तो नहीं है। पदाधिकरियों की राय आ जाने के बाद, उक्त मुक़द्दमा आने वाले साल के शुरू तक स्थगित हो गया चूँकि ये अर्ज़ी केवल मौलवी अब्दुल रहीम साहब के वास्ते थी और दरअस्ल उन का क़ुसूर भी कुछ न था। केवल मालिक की औलाद मान लिए जाने पर ज़बरदस्ती क़ैद किए गए थे, इस वास्ते हम लोगों को बस उन की रिहाई का इन्तज़ार था। इस ज़रिए से अपनी रिहाई का तो मुझ को गुमान भी न था। हमारे आख़िर वक़्त में सब बंगाल कोर के साहब लोग पोर्ट ब्लेयर जमा हो गए थे। इस सबब से उन को विद्वेष भी हम लोगों से ज़्यादा था।

1881 में बुढ़ापे और कमज़ोरी की वजह से, मौलवी अहमदुल्लाह साहब, जिन की उम्र उस वक़्त अस्सी साल के क़रीब थी, बहुत दुर्बल और दुश्मनों की कृपा के योग्य हो गए थे। उन्होंने अपनी ये क्षीण हालत देख कर अपने बेटे मौलवी मुहम्मद लक़ैन साहब से, जो कलकत्ता में ठहरे हुए थे, बुला कर मुलाक़ात करना चाहा। हालाँकि पोर्ट ब्लेयर के आम नियम के कारण, ये मुलाक़ात जायज़ और दुरुस्त थी मगर केवल इस सबब से कि अहमदुल्लाह वहाबी है, उन की ये दरख़्वास्त नामंज़ूर हो गई।

इस बीच में इम्तेहानन मैंने भी एक दरख़्वास्त की थी कि मुहम्मद रशीद मेरे असली भाई के लड़के को मेरे पास पोर्ट ब्लेयर में आने की इजाज़त बख़्शी जावे। हालाँकि ये दरख़्वास्त भी पूरी तरह मंज़ूरी के क़ाबिल थी मगर सिर्फ़ इस वजह से कि दरख़्वास्त करने वाला वहाबी है, वह भी नामंज़ूर हो गई। इन्हीं दिनों में मैंने एक दूसरी दरख़्वास्त वास्ते तरक़्क़ी तनख़्वाह के भी पेश की थी, जिस पर मुझ को सिर्फ़ उन के विद्वेष का अन्दाज़ और गहराव की टोह लेना मंज़ूर था। हालाँकि हमारे साहब ज़िला ने मेरी दरख़्वास्त पर बड़ी लम्बी-चौड़ी सिफ़ारिश लिखी थी लेकिन जो हुक्म करनैल केडल साहब ने उस पर जारी किया, हर-हर फ़िकरा [वाक्य] उस का अनुचित पक्षपात और अदावत [शत्रुता] से भरा हुआ है। मैं उस वक़्त समझ गया कि ये हुक्काम मुझ को आँख से देखना भी पसन्द नहीं करते और हर दम इस फ़िक्र में हैं कि कोई क़ानूनी हीला पा कर बैत, बेड़ी, जेल, ज़ब्ती जायदाद वग़ैरा से जिस क़द्र कर सकें, मुझ को सज़ा देवें मगर मैं ख़ुदावन्द-ए-करीम और हफ़ीज़ [मेहरबान और रक्षा करने वाला ईश्वर] के होते उन की क्या परवाह करता था? आख़िर कुछ भी न कर सके और मैं छुट कर चला आया।

मौलवी अहमदुल्लाह साहब की मौत और अल्लाह से मिलने वाली मदद पर पक्का भरोसा

जब मौलवी अहमदुल्लाह साहब निहायत कमज़ोर और सुबह का चराग़ हो गए तो मौलवी अब्दुल रहीम साहब ने उन की हालत और कमज़ोरी बयान कर के हुक्काम को लिखा कि मैं उनका क़रीबी रिश्तेदार हूँ, वीपर में कोई उन की देखरेख करने वाला नहीं है, इस वास्ते उम्मीदवार हूँ कि उन को अबरडीन में मेरे घर पर रहने की इजाज़त बख़्शी जावे। ये दरख़्वास्त भी, जिस के पढ़ने से संगदिल [पत्थरदिल] का दिल नरम हो जावे, फ़क़त [केवल] इस वजह से नामंज़ूर की गई कि अहमदुल्लाह और अब्दुल रहीम, दोनों वहाबी हैं। उन के साथ ऐसी रिआयत और मेहरबानी नहीं हो सकती। जब उक्त मौलवी साहब का हाल निहायत पतला हुआ और साहब लोगों के विद्वेष का ये हाल था, तो मौलवी अब्दुल रहीम साहब ने ये इजाज़त चाही कि मुझ को रात को वीपर में उन के पास रहने की इजाज़त बख़्शी जावे। सो ये दरख़्वास्त बड़ी जाँच और बहस के बाद, मंज़ूर हो कर मौलवी अब्दुल रहीम साहब को 20 तारीख़ नवम्बर को शाम के वक़्त पास मिली और उसी रात 21 नवम्बर सन 1881 ईसवी मुताबिक़ 28 मुहर्रम सन 1218 हिजरी शब दोशम्बा [सोमवार] को बवक़्त एक बजे रात के उक्त मौलवी साहब की रूह इस जिस्म क़ैद-दर-क़ैद को छोड़ कर फ़िरदौस बरीं [सब से ऊपर के स्वर्ग] को परवाज़ कर [उड़ान भर] गई। मौलवी साहब की मौत के वक़्त उन का एक मुलाज़िम अब्दुल वाहिद नाम, उन के पास हस्पताल में हाज़िर था। मरने

के वक़्त मौलवी साहब ने, जो पहले थोड़े दिनों से आलम-ए-बेहोशी में थे, आँख खोल कर इल्ललाहा या मालिकुल मुल्क [अल्लाह के अलावा कोई दूसरा मालिक नहीं है] आख़री कलमा फ़रमाया और सर्द हो [ठण्डे पड़] गए। 21 तारीख़ को बवक़्त 8 बजे फ़ज्र [सुबह] के बमुक़ाम अबरडीन हम लोगों को सूचना हुई। हम सब आदमी, समेत बहुत से दोस्तों के, 9 बजे सुबह को वीपर में पहुँच गए। मैं कचहरी ज़िला में मुंशी था और साहब ज़िला की इजाज़त के बिना जा नहीं सकता था मगर अधिकारियों के पक्षपात और विद्वेष की वजह से ये उम्मीद ही न थी कि मुझ को वहाँ जाने की इजाज़त हो। इस वास्ते मैं सारे काम अल्लाह पर छोड़ कर बिला इजाज़त चला गया और सूचित करने के लिए एक संक्षिप्त अर्ज़ी सड़क पर खड़े हो कर लिख कर भेज दी कि मैं मौलवी अहमदुल्लाह साहब की तजहीज़-ओ-तक़्फ़ीन [कफ़न और अंत्येष्टि क्रिया की व्यवस्था] में शामिल होने को वीपर जाता हूँ, आज की मेरी ग़ैरहाज़री माफ़ फ़रमाई जावे।

हम ने वीपर में पहुँच कर आख़री दफ़ा हुक्काम अंग्रेज़ी से ये भी कर देखी कि हम को इजाज़त बख़्शी जावे कि मौलवी अहमदुल्लाह साहब की लाश को अबरडीन में ले जा कर उन के सगे भाई मौलवी यहया अली साहब की क़ब्र के समीप दफ़न कर देवें। ये दरख़्वास्त भी नामंज़ूर हुई और उन की लाश पर भी अंग्रेज़ों ने हुक्म चला लिया। जब ये दरख़्वास्त भी नामंज़ूर हुई तो लाचार, ग़ुस्ल-ओ-नमाज़ के बाद, उन की लाश को ले जा कर डण्डरस सीट स्थित कब्रिस्तान में, जो वीपर से थोड़ी दूर है, दफ़न कर दिया।

बंदिश के सालों के अपने अनुभवों में मैंने ये भी अकसर देखा कि जब कभी किसी अफ़सर या हाकिम की मदद पर मैंने भरोसा किया और ख़ुदा की तरफ़ ध्यान न रखा, तो मेरे रब ने उसी ख़याली मददगार के हाथ से मुझ को कष्ट पहुँचवाने का बन्दोबस्त कर दिया। मगर जब मैं तौबा करने वाला हो कर उस की तरफ़ प्रवृत्त हुआ तो फिर उस ग़ालिब [शक्तिशाली] ज़बरदस्त हिकमत वाले ने मेरी मदद की और आफ़त से निजात बख़्शी। और जो मेरे दुश्मन थे और जिन से मैं डरता था, उन को मेरी सहायता और रक्षा पर खड़ा कर दिया। काले पानी में मिस्टर रोप इस्टराफ़ असिस्टेंट कमिशनर मेरा पहला शागिर्द [विद्यार्थी] था जिस की उम्मीद का मुझ को बहुत भरोसा था, तो उस सीधा रास्ता पाने वाले शागिर्द ने चार-पाँच ऐसी सख़्त रिपोर्टें मेरे ऊपर कीं कि अगर बर्च साहब, जिस को मैं अपना दुश्मन जानी जानता था, मेरी मदद न करता तो मैं एक ही रिपोर्ट पर जेल में पहुँच गया होता। दूसरे नम्बर में मेरे ख़याल में पराथ्रू साहब मेरे बड़े मददगार थे। उन्होंने एक हल्की दरख़्वास्त कृष्ण दास स्वीपर पर, मेरी सज़ा के वास्ते लिख दिया। उस में भी मेजर बर्क साहब ने, जो मेरे ख़याल से मेरे दुश्मन थे, निहायत दिलेरी से मुझ को बचा लिया। ख़ुदावंद-ए-तआला [महान

ईश्वर]को किसी तरह भी मंज़ूर नहीं है कि मैं उस की तरफ़ से ध्यान फिरा कर ग़ैरुल्लाह [अल्लाह को न मानने वाले] की तरफ़ प्रवृत्त होऊँ।

बेटी की शादी बाबत बीवी का पत्र और रिहाई का आदेश

सितम्बर 1882 में लाचार हो कर मेरी बीवी ने मुझ को पानीपत से लिखा कि लड़की जवान हो गई तुम्हारी। रिहाई की उम्मीद पर आज तक उस की शादी का इरादा भी नहीं किया। अब प्रकट तौर पर तुम्हारी रिहाई की कोई सूरत होती जल्दी दिखाई नहीं देती, इस वास्ते अगर इजाज़त दो तो किसी जगह उस की शादी का बन्दोबस्त किया जावे और इस मंगल कार्य के वास्ते कुछ ख़र्च ज़रूरी भी भेज दो। मैंने 14 अक्तूबर सन 82 ईसवी को गोया रिहाई के हुक्म की तारीख़ से ढाई माह पहले बक़द्र तीन सौ रुपये के नक़द व ज़ेवर व कपड़े पानीपत को भेज दिया। और अपनी बीवी को लिखा कि तुम किसी दीनदार मुसलमान से इस लड़की की शादी कर दो मगर शादी के पहले उस आदमी का नाम और पेशा और धार्मिक आचरण की स्थिति वग़ैरा लिख कर के मेरे पास भेज दो। चूँकि हिंद के ख़त का जवाब डेढ़-दो महीने में बज़रिए गनबोट आता है, इस सबब से अभी ये सवाल-ओ-जवाब तय भी नहीं हुए थे कि 30 दिसम्बर सन 1882 ईसवी को मेरी रिहाई हो कर मुझ से पहले पानीपत में मेरी बीवी को इतिलाअ [सूचना] हो गई और मैंने भी उन को लिख भेजा कि अब मैं ख़ुद आता हूँ। आप आ कर ख़ुद उस का इन्तज़ाम करूँगा।

मैंने पानीपत में जा कर एक अजीब हाल सुना कि जब मेरा भेजा हुआ पुलिंदा कपड़े व ज़ेवर और 150 रुपये नक़द पानीपत में पहुँच कर मुहल्ले की औरतों के एक समारोह में खोला गया तो क़ैद की विवशता की वजह से इस मंगल कार्य में मेरे शामिल न हो पाने के कारण, दौलत और ज़ेवर मिलने की ख़ुशी की बजाए मेरे घर में कोहराम मच गया था। मेरी बीवी और लड़की ज़ार-ज़ार रो कर ये दुआएँ करती थीं कि ऐ ख़ुदा, उस को भी अपनी चमत्कारी प्रकृति से इस मंगल कार्य में शरीक कर। उन की वो ज़ारी और फ़रियाद दुआओं को क़ुबूल करने वाले ने उसी दम क़ुबूल कर ली और इस के सिर्फ़ एक माह बाद मेरी रिहाई का हुक्म जारी हो गया और ज़र-ओ-ज़ेवर वग़ैरा भेजने के वक़्त, मुझ को भी बहुत अधिक तमन्ना थी कि किसी तरह अपनी लड़की का निकाह मैं ख़ुद पढ़ता, गो यह बात महज़ ग़ैरमुमकिन थी। मगर उस की क़ुदरत के क़ुरबान जाइये कि आख़िर उस की इनायत [कृपा] से मैं उस जल्से में शरीक भी हो गया और वह निकाह भी मैंने ख़ुद पढ़ा।

अब जो मेरी रिहाई का ज़माना क़रीब आया तो मैं हर अगनबोट में अपनी रिहाई की प्रतीक्षा में रहता और उस मुल्क के उपहार जमा कर के चलने को तैयार बैठा था। आख़िर 22 जनवरी सन 1883 ईसवी, दिन सोमवार को महारानी नाम अगनबोट यह हुक्म ले कर

पहुँचा कि जितने आदमी बजुर्म बग़ावत वहाबी केस में क़ैद हैं, सब यकक़लम [सिरे से] रिहा कर के हिन्द को रवाना कर दिए जावें। उन के लोकल गौरमेंट उन की रहने की जगह के वास्ते उचित बन्दोबस्त करेंगे। जब यह हुक्म वहाँ पहुँचा, तो एक मैं और दूसरे मौलवी अब्दुल रहीम, तीसरे मियाँ अब्दुल ग़फ़्फ़ार, चौथे मौलवी तबारक अली, पांचवें मौलवी अमीरुद्दीन, छठे मियाँ मसूद, कुल छ: नफ़र [व्यक्ति] इस मुक़द्दमे के वहाँ मौजूद थे। सो सब की रिहाई हो गई। जब यह हुक्म अख़बारों के ज़रिए हिन्द में मशहूर हुआ तो बवजह जमियत-ए-इस्लामी जुमला अंजुमन व मजलिस हा-ए-इस्लाम ने लॉर्ड रिपन साहब की इस शाही दयादृष्टि और राजाओं का सा रहम करने पर मेमोरियल के ज़रिए उन का शुक्रिया अदा किया। जैसे हमारी गिरफ़्तारी पर हर घर-घर तमाम हिन्द में वाबेला मच गया था, वैसे ही घर-घर ख़ुशी और शुक्रिया की बैठकें की गईं। गो अकसर धर्म-आधारित पक्षपात करने वाले पदाधिकारी वर्ग के सलूक ने इस ख़ुशी को किसी क़द्र घटा दिया है मगर लॉर्ड रिपन साहब की तारीफ़ और शुक्रगुज़ारी से हमारी ज़बान और क़लम कभी कमी रखने वाली न होगी, जिस की बड़े पैमाने पर रहम वाली पॉलिसी से हम को हिन्द का देखना फिर नसीब हुआ।

इसी अरसे में मेरे एक पुराने शागिर्द कप्तान टेम्पल साहब ने, जो मेरी रिहाई के वक़्त ख़ास कैम्प अम्बाला में मजिस्ट्रेट थे, मेरी रिहाई की ख़बर पा कर मुझ को लिखा कि अगर तुम मेरे पास रहना क़ुबूल करो तो मैं गौरमेंट से इजाज़त ले कर तुम को अपने पास बुला लूँ। मैंने इस पयाम [संदेश] को अल्लाह से मिली मदद समझ कर फ़ौरन क़ुबूल कर लिया और उन्होंने भी उसी दम गौरमेंट पंजाब से इजाज़त हासिल कर के और आप मेरी ज़मानत करने वाला हो कर कुल शर्तें निगरानी वग़ैरा मेरे ऊपर से उठवा दीं।

अण्डमान में छोटी बीवी का आजीवन कारावास पूरा न होने की वजह से रिहाई का टलना

जब मेरी रिहाई का हुक्म आया तो मेरी बीवी ख़ुर्द [छोटी] आजीवन कारावासी थी और उस वक़्त उस को सिर्फ़ चौदह बरस क़ैद में हुए थे, इस वास्ते उसी अगनबोट में गौरमेंट हिन्द को सूचना दी गई कि जब तक उस की बीवी रिहा न होवे, वो हिन्द को नहीं जा सकता। अपनी रिहाई का हुक्म पा कर उसी वक़्त मैंने गौरमेंट पंजाब को लिखा कि यहाँ निहायत बढ़िया मेरा एक घर मौजूद है और मैं सौ रुपये माहवार का नौकर हूँ और हिन्द में न मेरा घर है न मकान और ग़ालिबन [सम्भवत:] पंजाब के पदाधिकारी वर्ग मेरे वहाँ आने पर मुझ से नाहक छेड़छाड़ किया करेंगे और मुझ को पूर्व क़ैदी समझ कर कोई नौकरी वग़ैरा भी न देवेंगे, इस वास्ते मैं उम्मीदवार हूँ कि बतौर आज़ाद मुझ को काले पानी में रहने की इजाज़त

हो जावे कि कभी-कभी हिन्द में आ कर अपने बाल-बच्चों को देख जाया करूँगा। मेरी इस दरख़्वास्त के साथ चीफ़ कमिशनर पोर्ट ब्लेयर ने भी बड़ी लम्बी-चौड़ी सिफ़ारिश की और लिखा कि कुछ सूरत गुज़ारा पूर्वोक्त व्यक्ति की, बतौर ख़ास मुक़द्दमा के सरकार से तजवीज़ हो जावे, मगर अफ़सोस कि लफ़्टेंट गवर्नर पंजाब ने मेरी इस दरख़्वास्त को नामंज़ूर फ़र्मा कर लिखा कि उस को नौकरी मिल सकती है।

ख़ैर, इस आख़री फ़िकरे से किसी क़द्र मेरी तसल्ली हो गई। जो वही तसल्ली अल्लाह को न मानने वालों की तरफ़ से मेरे रब को नापसन्द हो कर हमारे गौरमेंट का सलूक मेरी उम्मीद और आशा के सरासर ख़िलाफ़ ज़ाहिर करा दिया। 3 मार्च सन 83 को मौलवी अब्दुल रहीम व मियाँ अब्दुल ग़फ़्फ़ार व मौलवी अमीरुद्दीन व तबारक अली रवाना हिन्द हो गए और बख़ैरियत तमाम अपने-अपने घर पहुँच गए। इस के बाद 28 अप्रैल सन 1883 ईसवी को मियाँ मसूद भी चले गए। केवल मैं अकेला अपनी बीवी की रिहाई के हुक्म के इंतज़ार में रह गया। एक मई सन 1883 ईसवी को मेरी बीवी की रिहाई भी आ गई मगर उस वक़्त मेरी बीवी को छ: महीने का हमल [गर्भ] था और समन्दर में मौसम तूफ़ान का शुरू हो गया था, इस वास्ते मैंने नवम्बर के महीने तक व मुहर्रम सन 1300 हिजरी पोर्ट ब्लेयर में रहने की इजाज़त हासिल कर ली। इस समय में मैंने अपने घर का सामान बेचना शुरू किया और औने-पौने पर जैसे हुआ, बेच डाला। अक्तूबर सन 83 ईसवी में मैंने चाहा कि मेरा लकड़ी का बना हुआ घर जिस में मैं रहता था, मस्जिद बना कर ख़ुदा के नाम पर दान कर दिया जावे और सब मुसलमान जो बग़ैर मस्जिद के तकलीफ़ उठाते थे, इस वक़्फ़ से बहुत ख़ुश हुए मगर मेजर बर्च साहब डिप्टी कमिश्नर ने धर्म आधारित पक्षपात के चलते ये रिपोर्ट कर दी कि यह शख़्स वहाबी है और यह मस्जिद भी वहाबियों के क़ब्ज़े में रहेगी, इस वास्ते यहाँ मस्जिद बनाने की इजाज़त न दी जावे। बस वही वहाबियों के प्रति विद्वेष इस शुभ कार्य को रोकने वाला हुआ। मैं देख रहा हूँ कि वहाबियत के प्रति विद्वेष ने अंग्रेज़ों को ऐसा देखने वाला किया है कि इस धार्मिक पक्षपात के नशे में सच-ग़लत कुछ नहीं देखते। बड़े-बड़े ज़ुल्म ग़रीब, निस्सहाय, हानि न करने वाले और बिना बुराई के वहाबियों पर कर रहे हैं और नामालूम इस बेवजह और अनुचित विद्वेष का अंजाम क्या होगा।

कुछ बातें पोर्ट ब्लेयर के क़ानून, क़ैदियों के साथ बरताव और लोगों के बारे में

जब कि मैंने अपने पोर्ट ब्लेयर में दाख़िल होने के ज़िक्र के बाद पोर्ट ब्लेयर के पुरातन निवासियों और भूगोल से सम्बद्ध हालात बयान किए हैं, इस मुक़ाम पर अपने पोर्ट ब्लेयर

से रवाना होने के ज़िक्र के पहले यहाँ के क़ानून और लोगों के समूह और तौर-तरीक़े का ज़िक्र कर के इस जज़ीरे [टापू] से कूच करूँ।

ये जज़ीरा अन्य इलाक़ों की तरह एक स्थाई लोकल गवरमंटी है। यहाँ चीफ़ कमिश्नर साहब अण्डमान को इख़्तियार है कि जो एक्ट चाहें, यहाँ जारी कर देवें और जिस अधीनस्थ अफ़सर को जो चाहें, दीवानी या फ़ौजदारी के अधिकार प्रदान करें। यहाँ का चीफ़ कमिश्नर इस विभाजन का शेशन जज ही है। यहाँ चीफ़ कमिश्नर का हुक्म अंतिम है, उस का कुछ अपील नहीं हो सकता। सिर्फ़ मुक़द्दमात फाँसी में गवर्नर जनरल, इज्लास कौंसिल की मंज़ूरी ली जाती है। बाक़ी सब दीवानी और फ़ौजदारी कामों में यहाँ का चीफ़ कमिश्नर हाई कोर्ट भी है। यहाँ कोई जहाज़ या मुसाफ़िर या कोई माल व असबाब बिला इजाज़त साहब चीफ़ कमिश्नर बहादुर के नहीं आ सकता और न कोई आदमी बिला इजाज़त उक्त साहब के, इस सेटलमेंट से जा सकता है। यहाँ का चीफ़ कमिश्नर सद्रमक़ाम [मुख्यालय] रॉस में रहता है। उस की तनख़्वाह 3000 रुपये माहवार है। ये विभाजन दो ज़िलों में बंटा है, एक ज़िला जनूबी [दक्षिणी] जिस का मुख्यालय अबरडीन है, दूसरा शिमाली [उत्तरी] जिस का मुख्यालय चाटम है। दोनों साहिब-ज़िलों के अधीन दूसरे बहुत से असिस्टेंट और एक्स्ट्रा असिस्टेन्ट कमिश्नर काम करते हैं।

इस सेटलमेंट की कार्यप्रणाली और नियमावली सन 58 की शुरुआत से अब तक समय-समय पर बहुत बदलते रहे हैं और कहावत 'रूबा बसख़्ती व जब्रहैन और हर के आमद बरआन मज़ीद क़र्द' [हर नए आने वाले व्यक्ति ने जो कुछ पहले से मौजूद था, उस में इज़ाफ़ा किया] पर यहाँ ख़ूब अमल होता है। यहाँ 2000 के क़रीब क़ैदी सालाना हिन्द से नए क़ैद हो कर आते हैं और इस वक़्त क़रीब चौदह हज़ार क़ैदी यहाँ मौजूद हैं। जहाज़ के उतरने के एक महीना बाद उन की बेड़ी कट जाती है। यहाँ कोई जेल नहीं है। बारकों में ये क़ैदी अफ़सरों के अधीन रहते हैं। दिन में, जैसा हिन्द की जेलों में होता है, उसी तरह सख़्त मशक़्क़त [श्रम] करते हैं। दो वक़्त उन को पुख़्ता खाना मिलता है। रात को उन्हीं बारकों में सो रहते हैं। इन बारकों की हिफ़ाज़त पर सिवाए क़ैदी अफ़सरों के और कोई पुलिस या जंगी पल्टन नहीं है। ग़रज़ क़ैदियों की हिफ़ाज़त और निगरानी और उन को काम पर विभाजित करना और उन से काम करवाना, ये सब पुराने क़ैदी अफ़सरों के सुपुर्द है, जो सर पर लाल दुपट्टा और गले में चपरास [पेटी, जिस में पीतल के टुकड़े पर मालिक या दफ़्तर का नाम खुदा रहता है] डाल कर रहते हैं और अपने ओहदों के दर्जे या श्रेणी के मुताबिक़, अलावा ख़ुराक के, नक़द तनख़्वाह भी सरकार से पाते हैं। इन नए क़ैदियों को भी बशर्त नेकचलनी तीन-चार बरस के बाद कुछ नक़द तनख़्वाह मिलने लग जाती है और बाद तनख़्वाह पाने

के ये नए क़ैदी भी पट्टे वाले अफ़सर मुकर्रर हो जाते हैं। दस बरस नेकचलन रहने के बाद हर एक मर्द क़ैदी टिकट पाने का पात्र हो जाता है और टिकट यह है कि क़ैदी आज़ाद हो कर बारक से निकल जाता है और शहर और बस्तियों में रह कर जो चाहे पेशा करे और खावे-कमावे। क़ैदियों की क़रीब पचास साठ बस्तियाँ आबाद हैं, जिन में क़ैदी ही नम्बरदार और चौकीदार व पटवारी हैं। जो लोग खेती करने का टिकट लेते हैं, उन को गाँव में नौतोड़ [नई उपजाऊ] ज़मीन बक़द्र 15 बीघा के सरकार से मिल जाती है और तीन बरस तक महसूल [किराया, भाड़ा] माफ़ रहता है और कभी-कभी कुछ नक़्क़ादी [वित्त] और बैल और ख़ुराक से भी सरकार मदद देती है। जो हलवाई, नानबाई [रोटी पकाने या बेचने वाला] या नाई वग़ैरा पेशों के टिकट लेते हैं उन को भी कभी-कभी कुछ मदद मिलती है। इस टिकट पाने के बाद क़ैदी आज़ाद हो जाता है, जो चाहे सो करे।

औरत क़ैदियों, शादी और परिवार से सम्बद्ध नियम व हालात

जो औरतें क़ैद हो कर आती हैं, वो एक अलग जज़ीरे में महिला अफ़सरों के अधीन बारक में रहती हैं। यथाशक्ति जब तक वो बारक में रहती हैं, ज़िनाकारी [व्यभिचार] की पूरी-पूरी रोक रहती है। औरतों को भी अपनी बारक के अन्दर पिसाई-सिलाई वग़ैरा की मशक़्क़त करनी होती है। औरतों को पाँच बरस के बाद टिकट आज़ादी का मिल जाता है लेकिन जवान औरतें जब तक शादी न कर लेवें, टिकट पा कर अपनी बारक के बाहर नहीं जाने पातीं। पाँच बरस की क़ैद का समय पूरा होने के बाद औरत को इख़्तियार है, जिस मर्द से चाहे शादी कर लेवे। मर्दों में भी, टिकटवालों के सिवाए, मशक़्क़ती बारक में रहने वाले क़ैदी शादी नहीं कर सकते। जिस मर्द को शादी करना मंज़ूर होता है, वो औरतों के टापू में जा कर किसी औरत को पसन्द कर के, उन को कुछ दे-दिला कर राज़ी कर लेता है। जब मियाँ-बीवी राज़ी हो जाते हैं तो उन को अपनी रज़ामन्दी और महब्बत व मुवाफ़क़त [अनुकूलता] से मिल कर रहने का एक इक़रारनामा साहब चीफ़ कमिश्नर बहादुर के सामने लिख देना पड़ता है। उस के बाद बीवी मियाँ के घर चली आती है।

टिकट वाले क़ैदी मुल्क से अपने बाल-बच्चों को भी बुला सकते हैं। जब कोई क़ैदी 20 बरस तक नेकचलन रहे तो फिर उस की रिहाई भी हो जाती है और उस को बाद रिहाई के अधिकार है चाहे उस मुल्क में रहे चाहे अपने वतन और जन्मभूमि को चला आवे। टिकट पाने के बाद क़ैदियों को इख़्तियार है कि अपनी हलाल कमाई से चाहें लाखों रुपया जमा कर लेवें मगर टिकट से पहले, अधिकारियों को सूचना और इजाज़त के बिना वो न कुछ अपने पास रख सकता है और न किसी दूसरे के पास जमा कर सकता है।

क़ैदी जब तक बारक में रह कर मशक़्क़त करते हैं, एक बरस या तीन महीने में एक ख़त अपने घर को भेज सकते और एक ख़त हिन्द से आया पा सकते हैं। मगर टिकट वाले हर महीने में एक ख़त भेज सकते और एक मँगा सकते हैं।

अलग-अलग क़ौमों के लोगों का मेला-जमावड़ा

पोर्ट ब्लेयर एक ऐसी जगह है जहाँ चीना [चीन], बरहमा [बर्मा], मलाई [मलाया], मंगली [सिन्हाली], जंगली, निकोबारी, कश्मीरी, पश्तूनी, ईरानी, मकरानी, अरबी, हब्शी [इथोपियाई], पारसी, पुर्तकीज़, अमरीकन, अंग्रेज़, डैन [डेन्मार्क के लोग], फ़्रंच वग़ैरा और हिन्दोस्तान के सब ज़िलों और शहरों के आदमी जैसे कि भूटिया [भूटान], नेपाली, पंजाबी, सिंधी गुजराती, देसवाली, हिन्दोस्तानी, मध्य भारत के बृज के लोग, आसामी, मिथली, बुंदेलखण्डी, ओड़िया, तेलंगी, मरहटे, करनाटकी, मद्रासी, मलयालम, गोंड, भील, बंगाली, कोल, संथाल वग़ैरा सब मौजूद हैं। जब ये लोग आपस में मिल कर बैठते हैं तो अपनी-अपनी ज़बान में बातचीत करते हैं मगर बाज़ार और कचहरियों की ज़बान यहाँ भी हिन्दोस्तानी है। हर मुल्क का आदमी यहाँ आ कर आप से आप हिन्दोस्तानी ज़बान सीख लेता है क्योंकि उस ज़बान को जाने बिना यहाँ आदमी का गुज़ारा नहीं हो सकता। मेरे ख़याल में पर्दा-ए-ज़मीन पर कोई दूसरा मुक़ाम [स्थान] ऐसी मुख़्तलिफ़ [अलग-अलग] क़ौमों से आबाद न होगा। क़रीब चवालीस अलग-अलग क़ौमों के लोग, जो एक दूसरे की ज़बान न समझ सकें, यहाँ मौजूद हैं।

शान-ए-इलाही से यहाँ एक ऐसा मेला जमा हुआ है, शायद आज तक पर्दा-ए-ज़मीन पर ऐसा मजमा अलग तरह का कहीं न जमा हुआ होगा। जब कोई बंगाली मर्द और मद्रासी औरत या भूटिया मर्द और पंजाबी औरत या सिंधी मर्द और करनाटकी औरत व जैसी कल्पना की जाए, आपस में शादी करते हैं और मियाँ बीवी की और बीवी मियाँ की बात नहीं समझते और आपसी तकरार और लड़ाई के वक़्त दोनों अपनी-अपनी ज़बान में एक-दूसरे को गाली देते हैं और दूसरे पक्ष का व्यक्ति कुछ नहीं समझता तो अजब हालत होती है। यहाँ जब किसी शादी के उत्सव पर दावत और न्यौता हो कर मुल्क-मुल्क की औरतें जमा हो कर अपनी-अपनी बोली में गाती और अपनी वज़अ पर [शैली से] नाचती-कूदती और अपने-अपने मुल्क का लिबास पहनती हैं तो वो तमाशा भी क़ाबिल-ए-दीद [देखने लायक़] है। यहाँ क़ौम की पाबन्दी जो हिन्दोस्तान की पुरानी बीमारी है, सिरे से, बिल्कुल छूट गई है। मुसलमान मर्द चाहे किसी ज़ात का हो, हर मुसलमान औरत से बिला रोकटोक शादी कर लेता है। इसी तरह हिन्दुओं में भी हिन्दू होना काफ़ी वाफ़ी है। एक ज़ात का होना ज़रूर नहीं है। बरहमनों के घरों में पासनैन [निम्न पासी जाति की औरतें] और जाटों के घरों

में ब्रहमनियाँ मौजूद हैं। यहाँ हर सिफ़त और सन्अत [गुण और कारीगरी] के अच्छे-बुरे सब क़िस्म के आदमी मौजूद हैं। यहाँ ठक वो ठक हैं कि दिल को ठग लेवें और चोर वो चोर हैं कि आँखों का काजल चुरा लेवें। यहाँ जादूगर, बाज़ीगर, बहरूपिए, भण्डेले, नक़्क़ाल, हिजड़े, नट, तवायफ़, मिरासी, गवैये, क़व्वाल और हर फ़न के नेक व बदमाश सब मौजूद हैं। यहाँ अच्छे और नेकों का भी यह हाल है कि कोई टापू मौलवी और पण्डित और दरवेश व भाईजी वग़ैरा से ख़ाली नहीं।

यहाँ मद्रासी और बंगाली सूखी मछली भी बड़े मज़े से खाते हैं। इस सूखी मछली को, जिस में सड़े हुए चमड़े के सी बू होती है, उम्दा-उम्दा [बढ़िया-बढ़िया] गोश्त पर ये लोग तरजीह देते हैं। बरहमा और चीना [बर्मा और चीन के लोग] पिन्नी खाते हैं, मछलियों को पीपों में भर कर सड़ाने से जब उन में कीड़े पड़ जाते हैं तो उन कीड़ों और सड़ी मछलियों को कूट कर पिन्नी बनती है और उस में ऐसी बदबू होती है कि हम लोग हवा के रुख़ एक मील तक भी उस की बदबू सहार नहीं सकते मगर बरहमा और चीना उस को बजाए गरम मसाले के हर उम्दा खाने पर भुर्भुरा कर बड़े शौक़ से खाते हैं। जब उन को पिन्नी मिल गई तो गोया दुनिया की ने'मत मिल गई। यहाँ किसी तवायफ़ या वेश्या की आम दूकान नहीं है मगर अकसर औरतें ऐसी बेहया और निर्लज्ज व कुल्टा हैं कि वेश्याओं को उन से शर्म आती है।

बाद तजरबे के मुझ को यह बात मालूम हुई कि अपनी-अपनी शैली और रस्म और बोली और लिबास हर किसी को पसन्द है। जंगली अपने जंगल में रहने और नंग-धड़ंग फिरने और कीड़े-मकौड़े खाने को हमारी अंगरखा/ चोग़ा और दोशालों और पुलाव व कुल्या [गुर्दा] पर तरजीह देते हैं। हमारे खानों से उन को कै होने लगती है। हमारे कपड़े पहनने से उन को ऐसी तकलीफ़ होती है जैसे हम को नंगा रहने से। बरहमा चीना हमारे घी के पकवानों को देख कर अपनी नाक बन्द कर लेते हैं, हमारे कुलिए और कोरमे और पुलाव के बघार से अरबों का दिमाग़ फ़रागंदा हो जाता है। अंग्रेज़ लोग हमारे इत्र को नहीं सूंघ सकते। ग़रज़ बचपन से ज़बान और नाक जिस का आदी हो गया है वही उस को पसन्द है। इस से साबित हुआ कि किसी मुल्क की रस्म-ओ-रिवाज और खाने और लिबास और पोशाक को बुरा कहना और अपने खाने वग़ैरा को दूसरों से बेहतर समझना महज़ हिमाक़त और नादानी है। जो जिस हाल में है, सो ठीक है। सब औलाद आदम में किसी को किसी पर कुछ बढ़त नहीं।

रिहाई के बाद अण्डमान छोड़ने से पहले दोस्तों को दी गई दावत और विदाई

जब मैं 9, माह नवम्बर सन 83 को सवार होने को था तो उस वक़्त मैंने एक आम दावत कर के अपने सब दोस्तों को मद्ऊ [आमंत्रित] किया था। इस दावत की फ़ेहरिस्त [सूचीपत्र] की पेशानी [माथे] पर लिखा था कि यह ख़ाकसार [विनीत] अठारह बरस के अस्थाई निवास के बाद बज़ाहिर हमेशा के वास्ते हिन्दोस्तान को जाने वाला है। उम्मीद कि आज मेरे कुल कृपा करने वाले, जिन के नामनामी नीचे दर्ज हैं, तशरीफ़ ला कर ख़ाकसार के साथ आख़री रूखा-सूखा उपस्थित भोजन खा कर शुक्रिया और आभार प्रकट करने का मौक़ा देवेंगे। जिस किसी को ये दावत पहुँची, बिना ऐतराज़ दौड़ा चला आया। ये दावत मेरे घर में मेरे सवार होने से बस एक घण्टा पहले दोपहर के वक़्त हुई थी। मेरी जुदाई से हाज़रीन के मुँह पर रूद अश्क जारी थीं। हालाँकि बहुत लोगों ने इस जुदाई समारोह में कुछ-कुछ स्पीच देना चाहा मगर दो लफ़्ज़ कहने के बाद हर किसी की हिचकी बंध जाती थी। मैं ख़ुद भी, जो एक लम्बा, उपदेशात्मक भाषण करने को था, एक लफ़्ज़ भी अदा नहीं कर सका और दिल की दिल में ही रह गई।

उस दिन इत्तफ़ाक़ से जुमआ [शुक्रवार] था। भोजन के बाद मौलवी लियाक़त अली साहब के साथ आख़री नमाज़ जुमआ पढ़ कर गाड़ियाँ तैयार खड़ी थीं। मैं सम्बन्धियों, साथ रहने वालों समेत, ख़ुद सवार हो कर जज़ीरा रॉस को चला आया। वहाँ मेरे हमराह भी असंख्य मर्द-औरत मुझे रुख़्सत [विदा] करने को आए थे। जब बवक़्त चार बजे शाम के मैं सम्बन्धियों समेत ख़ुद मुक़ाम रॉस से कश्ती पर सवार हो कर अगनबोट को चला तो बेशुमार लोग ख़ुशी और रंज से ज़ार-ज़ार रोते थे। इस वक़्त मेरे साथ एक मेरी बीवी और छ: बच्चे, समेत मेरे कुल आठ व्यक्ति थे और आठ हज़ार रुपये के क़रीब, कुल अचल और चल सम्पत्ति मेरे क़ब्ज़े में थी। उस वक़्त मैं अपनी उस हालत को, कि जब 11 जनवरी सन 66 को उसी घाट में एक लंगोटी बांध कर तने तनहा [अकेला] जहाज़ से उतरा था और अब ऐसे रंज [दुख-तकलीफ़] की जगह से आठ व्यक्ति और आठ हज़ार की सम्पत्ति समेत वापिस जाता हूँ, याद कर के क़ुदरत-ए-ख़ुदा पर तअज्जुब [हैरत] करता था। और चूंकि यह जहाज़ जिस पर मैं सवार होने को था, उसी जगह खड़ा था जहाँ वो जमना जहाज़ जो मुझ को ले कर आया था, खड़ा हुआ था, और उस दिन मैं फ़ज्र [सवेरे की नमाज़] के वक़्त उतरा था और आज शाम के वक़्त सवार होता था, इस वास्ते मुझ को अपना अठारह बरस तक इस जज़ीरे में रहना एक ख़्वाब-ख़याल मालूम होता था - और ऐसा ख़याल में आता था कि मैं आज फ़ज्र को जमना जहाज़ से उतरा था और आज ही सवार हो गया। इस कैफ़ीयत [हालत]

ने वक़्त मौत को भी आँखों के सामने हाज़िर कर दिया था कि इस वक़्त भी गो हज़ार बरस ज़िन्दा रह कर मरना नसीब हो तो यही कैफ़ीयत होगी कि मैं कुछ पल दुनिया में रहा और जैसे आया था, वैसे ही चला।

लेखक की सम्पत्ति का बंटवारा

मैंने अपने चलने से चंद रोज़ पहले बक़द्र राहख़र्च के अपने पास रख कर बाक़ी अपने पांच हज़ार रुपये नक़द को, जो उस वक़्त मेरे पास मौजूद थे, मर्द को एक हज़ार और औरत को पाँच सौ प्रति व्यक्ति के हिसाब से अपनी दोनों हवेलियों पर बांट दिए थे। मेरी बीवी कलाँ [बड़ी] और उस की बेटी के हिस्से के एक हज़ार रुपये भारतीय मुद्रा में परिवर्तित कर के पानीपत भेज दिए और बीवी ख़ुर्द [छोटी] और उस की औलाद के हिस्से के चार हज़ार ख़ज़ाना अम्बाला को रवाना कर दिए थे कि यहाँ उन के नाम आ कर बैंक में जमा करा दिए। गो मुझ को इस विभाजन के बाद बेरोज़गारी की वजह से कुछ हद तक तकलीफ़ हुई मगर मैं इस दौलत-ए-दुनिया को अपने से जुदा कर के हर तरह से भारमुक्त हो गया। मेरे पास मेरी व्यक्तिगत मिल्कीयत से केवल चंद किताबें और तीन-चार जोड़े कपड़े रह गए।

पोर्ट ब्लेयर में पहुँचने के बाद जब से मेरे हाथ में पैसा आया, मैं हमेशा अपनी बीवी और भाई व बहन वग़ैरा कुल अज़ीज़ों को वहाँ से भी बराबर ख़र्च भेजता रहा और किसी को कुछ तकलीफ़ होने नहीं दी मगर जब मैं यहाँ आया, तो मैंने अपने भाई बहन वग़ैरा को बेरोज़गारी के कारण ऐसा तंग हाथ और ख़राब दशा में पाया कि जिस का बयान करना मुहाल है। वो बेचारे बजाए इस के कि मुझ नए आए हुए को कुछ मदद देवें, मेरे ही सहारे जीने वाले हुए मगर मैं अफ़सोस करता हूँ कि अपनी बेरोज़गारी के सबब से यहाँ आ कर मैं उन से कुछ सलूक नहीं कर सका, जिस के सबब से वो लोग मुझ से नाख़ुश भी हो गए।

समुद्र का सफ़र

पांच बजे के आस-पास, हम ने महारानी नाम की इस अगनबोट पर सवार हो कर एक हिस्से पर अपना डेरा कर लिया। हम लोगों के अलावा उस जहाज़ पर और भी बहुत रिहाई वाली औरतें और मर्द और अन्य बहुत से मुसाफ़िर योरोपियन और हिन्दोस्तानी सवार थे। मौसम निहायत उम्दा और समन्दर बिल्कुल ठण्डा था। लहर और तूफ़ान का नाम न था। उस दिन मुहर्रम की भी दसवीं तारीख़ और सदी भी बदल गई थी। सूरज डूबने के आस-पास जहाज़ का लंगर उठाया गया और हम लोगों ने आँसुओं भरी आँखों से एक के बाद एक जज़ाइर अण्डमान को अलविदा कह कर पीछे छोड़ना शुरू किया। अब रात हो गई थी, चांदनी रात में समन्दर की लहरों की कैफ़ीयत बड़ी चमक-दमक दिखला रही थी। दूसरे दिन

हमारा जहाज़ जज़ीरा कोको में पहुँचा। दो रोज़ चलने के बाद किसी क़द्र पानी भी बरसा जिस से मुसाफ़िरों को कुछ तकलीफ़ हुई मगर जब जहाज़ थोड़ा आगे बढ़ गया तो वो तकलीफ़ रफ़ा हो गई और पानी भी बन्द हो गया। अली रज़ा नाम एक मशहूर ताजिर [व्यापारी] ने जहाज़ पर हमारी बड़ी ख़ातिर तवाज़ह की। दोनों वक़्त उम्दा खाना, गोश्त-मछली, चाय-कॉफ़ी, बर्फ़, क़िस्म-क़िस्म के मेवे और मिठाइयाँ हमारे वास्ते हरदम मौजूद रहती थीं। बड़े आराम और राहत से यह सफ़र कटा।

जिस वक़्त मारे बरसात के सब मुसाफ़िर पानी में तरबतर काँप रहे थे, उस वक़्त नूरूदीन नाम एक रिहाई वाले की औरत को प्रसव का दर्द शुरू हुआ और उसी हालत में कि ज़च्चा पानी में शोरबोर काँप रही थी, उस को पलूठा बच्चा पैदा हुआ, और वहाँ अछवानी [प्रसूता स्त्रियों के लिए चाट कर खाने की एक दवा] कहाँ, उस दिन मुश्किल से ज़च्चा को दालभात मिला होगा मगर उस को या उस के बच्चे को न कुछ मर्ज़ हुआ न बीमारी। दोनों सही तनदुरुस्त थे और जब जहाज़ कलकत्ता में जा कर लंगर हुआ, उस नवजात बच्चे की उम्र सिर्फ़ दो दिन की होगी। उस की माँ अपने बच्चे समेत दनदनाती हुई जहाज़ से उतर कर चली गई और फिर कलकत्ता से उस के मर्द ने एक टिकट सीधा लाहौर तक का लिया। इसी हालत में ज़च्चा समेत बच्चा ख़ुश-ओ-ख़ुर्रम [प्रसन्न] रवाना हो गई। उस बच्चे का नाम बवजह समन्दर में पैदा होने के समन्दर बीबी रखा गया था।

कलकत्ता पहुँचना और उस के बाद का सफ़र

ख़ैर, अल्लाह की मेहरबानी से हम चार दिन और चार रात के सफ़र के बाद 13 नवम्बर सन 1883 ईसवी मुताबिक़ चौदह मुहर्रम सन 1301 हिजरी दाख़िल कलकत्ता हुए और वहाँ चीनापाड़ा में जा कर मौलवी अब्दुल रहीम साहब के सगे भाई मौलवी अब्दुल रऊफ़ साहब के मकान में अस्थाई तौर पर ठहरे। दो रोज़ उक्त मौलवी साहब के मकान में रह कर तीसरी शब बवक़्त नौ बजे रात के, हम बसवारी रेल कलकत्ता से हिन्द को रवाना हो गए। चूंकि मैं बाल-बच्चों और सामान समेत ख़ुद सरकारी किराए व ख़र्च पर जाता था, कलकत्ता से मुझ को सरकारी टिकट अलाहबाद तक का मिला। इस सबब से कलकत्ता और अलाहाबाद के बीच कहीं राह में ठहर नहीं सकता था। पटना में मौलवी अब्दुल रहीम साहब से, जो वह और मैं बीस बरस तक इकट्ठे रहे थे, मिलने की बहुत लालसा थी। इस वास्ते कलकत्ते से मौलवी अब्दुल रहीम साहब को तार में ख़बर भेज दी कि स्टेशन पर आन कर मुझ से मुलाक़ात करें। मगर नामालूम वो कमबख़्त तार कहाँ मारा गया। न उन को ख़बर हुई, न वो मुलाक़ात को आए। दिल की दिल में ही रह गई। ख़ैर, हम अलाहाबाद और वहाँ से कानपुर और कानपुर से अलीगढ़ और अलीगढ़ से सहारनपुर और वहाँ से अम्बाला तक

का मंज़िल-दर-मंज़िल टिकट लेते हुए 21 नवम्बर सन 83 को रात 9 बजे स्टेशन कैम्प अम्बाला पर पहुँच गए। कलकत्ता से दो सिपाही, एक नायक हमारे माल और बच्चों की हिफ़ाज़त के वास्ते बतौर अरदली अम्बाला तक हमारे साथ आए।

एक वो दिन था कि हम 22 फ़रवरी सन 65 को जेल अम्बाला से लोहे के ज़ेवर, हथकड़ी और जोगियाना लिबास व काली पगड़ी से आरास्ता-पैरास्ता [सुसज्जित] हो कर पुलिस की हिरासत में अम्बाला से पश्चिम को रवाना हुए थे और बड़ी मुसीबतें खींचते हुए अम्बाला से रवानगी की तारीख़ से ग्यारह माह बाद 11 जनवरी सन 66 को काले पानी में दाख़िल हुए थे और या यह दिन हुआ कि हम बड़े आराम से दरियाई सफ़र को तय कर के कलकत्ता में पहुँचे और वहाँ से एक ख़ास दर्जा रेल में बिला शिरकत अहदी (किसी भी अन्य सवारी के बिना, स्वतन्त्र) सवार होते हुए सात व्यक्ति बाल-बच्चों और नक़द और जिंस को साथ ले कर नवाबों की तरह बढ़िया ऊनी कपड़े का लिबास पहने हुए पोर्ट ब्लेयर से चल के ग्यारहवें दिन पूरब से आ कर दाख़िल अम्बाला हुए। मेरी उस हालत और शान और औलाद और माल व धन-सम्पत्ति को देख कर ख़ल्कत [लोगों] को हैरत और कट्टर लोगों को अफ़सोस और मेरे शुभचिन्तकों को ख़ुशी थी। राह में भी जहाँ जहाँ मैं उतरा, हर शहर के मुसलमान मेरा नाम सुन कर मेरी मुलाक़ात को दौड़े चले आते और मेरी हालत को देख कर यह कहते थे कि अल्लाह बड़ा क़ादिर [शक्तिशाली] है, वह सब कुछ कर सकता है। राह में या अम्बाला में जो जो आदमी मेरे मुक़द्दमे और हालात से वाक़िफ़ थे, वो सब कहते थे कि तेरा इस मुल्क में इस शान से आना मुर्दे के ज़िन्दा होने से कम नहीं है। जो इस करामत को देख कर ख़ुदा की क़ुदरत पर ईमान न लावे, अलबत्ता वो दिल और आँख दोनों का अंधा है। दशा ग़ौर कीजिए कि यहाँ मेरी एक बीवी छूटी थी, काले पानी में मुझ को दो बीवी इनायत हुईं ; यहाँ मेरे दो बच्चे छूटे थे, वहाँ सात बच्चे बख़्शिश हुए और सामान और असबाब व नक़द व जिंस, हरेक चीज़ का नाम-ब-नाम बदले में उस क़ैदख़ाने में दे कर आख़िर मुझ को भी वापिस ले आया। 'व आतेनहु अहलहु व मसल्लोहुम मआहुम रहमतम मिन इंदिना व ज़िकरा बिलआबेदीन' – और हम ने उन को दे दिया वापस उन की औलाद को और जो कुछ उन से ले लिया था, वह सब उन को वापस कर दिया और यह सब हम ने अपनी रहमत से किया और हम अपनी इबादत करने वालों को इसी तरह बदला दिया करते हैं।

अम्बाला पहुँचना

दूसरे दिन सुबह हम शहर अम्बाला में पहुँचे और वहाँ के ज़िला पदाधिकारियों से इजाज़त ले कर कैम्प अम्बाला में अपने पुराने मालिक कप्तान टेम्पल साहब की ख़िदमत में

हाज़िर हुए। जब मैं कप्तान टेम्पल साहब के बंगले पर गया, वो दौड़ कर मेरे मिलने को बाहर निकल आए और अन्दर ले जा कर मुझ को मूढ़े पर बिठलाया और बहुत तसल्ली और तशफ़्फ़ी [सांत्वना] की और फ़रमाया कि आज की तारीख़ से हम बीस रुपये माहवार तनख़्वाह तुम को अपने निज से दिया करेंगे और तुम्हारी नौकरी के वास्ते भी जल्द अच्छा बन्दोबस्त हो जावेगा। अम्बाला पहुँचने के बाद, जब मैंने इस बीस साल के सफ़र को नक़्शा-ए-हिन्द से पैमाइश कर के देखा तो अम्बाला से चल बराह लाहौर वेमनी काले पानी तक और फिर काले पानी से बराह कलकत्ता अम्बाला तक क़रीब सात हज़ार मील की यात्रा हुई और भारत के कुछ उत्तरी ज़िलों के अलावा, क़रीब तमाम भारत का तवाफ़ या पर्तिमा [परिक्रमा] हो गया।

सदर बाज़ार कैम्प अम्बाला में एक मकान किराया ले कर मैं उस में बाल-बच्चों समेत ख़ुद ठहर गया, जहाँ मैं अभी तक रहता हूँ। मकान बहुत बढ़िया, नया, चूनागच, बीच बाज़ार में मस्जिद सौदागरों के समीप है जिस में आज तक गर्मी-जाड़े-बरसात सब मौसमों में मुझ को बहुत आराम मिला। यहाँ के बाशिन्दों में लश्करीपन [सिपहिया अन्दाज़] और अंग्रेज़ी शैली ज़्यादा होने के सबब से बेलिहाज़ी और ख़ुदगर्ज़ी [स्वार्थसाधन] भरी हुई है मगर अकसर मुसलमान मर्द और मेरे हमसाया [पड़ोसी] और हमारे मस्जिद के नमाज़ी फिर भी ग़नीमत हैं। क्योंकि मेरे बाल-बच्चों ने इस से पहले कभी जाड़ा-गर्मी न देखा था, इस वास्ते पहले जाड़े में उन को कुछ हद तक तकलीफ़ हुई मगर फिर तबीयत उस की आदी हो गई।

बीस बरस के बाद इन्सान की बनाई उस जेल की क़ैद से निकल कर राह में जगह-ब-जगह का हवा-पानी और तरह-तरह के मौसमी मेवे और बादाम का हलवा खाने से मेरी और मेरे बाल-बच्चों की तबीयत निहायत शादाँ और फ़र्हाँ [ख़ुश] थी। पोर्ट ब्लेयर से अम्बाला तक गोया दिन ईद और रात शबबरात [मुसलमानों का एक त्यौहार] की हालत रही। जब मैं घरेलू जीवन का सब ज़रूरी असबाब व सामान ख़रीद चुका तो 11 दिसम्बर सन 83 को एक हफ़्ते की रुख़्सत ले कर बराहे रेल पहले देहली और वहाँ एक रात रह कर दूसरे दिन शाम को बसवारी यक्का पानीपत पहुँचा और ख़ूबसूरत संयोग से पूरे बीस बरस के बाद वो ही 13 दिसम्बर मेरे पानीपत से देहली की तरफ़ भाग कर जाने की तारीख़ थी कि जब मैं बीस बरस पहले थानेसर से सवार हो कर बवक़्त सुबह अपनी बीवी को पानीपत में छोड़ कर और पानीपत से यक्के से सवार हो कर देहली को भागा था। जब मैं पानीपत की तरफ़ पूरब और दक्षिण की सड़क देहली पर शाम के वक़्त पानीपत को चला आता था तो ऐसा मालूम होता था कि आज फ़ज्र [सुबह] में अपनी बीवी और बच्चों को छोड़ कर

देहली को गया था और आज ही वापिस आ गया। वो बीस बरस का ज़माना महज़ ख़्वाब-ख़याल मालूम होता था।

घर पहुँचना, थानेसर का हाल और लोगों द्वारा हार्दिक स्वागत

ख़ैर, मग़रिब [सूरज ढलने के एकदम बाद] की नमाज़ के बाद मैं अपने घर में पहुँचा। मेरी बीवी और लड़की मुझ को देख कर बाग़-बाग़ हो गईं। बरोज़ फ़रार [भागने के दिन] ख़ुद जिस लड़की को मैंने चन्द महीने का छोड़ा था, अब उस को बीस बरस की उम्र में देखा। पानीपत के लोगों का, जिन्होंने ऐसे वक़्त में कि तिनका-तिनका मेरा दुश्मन हो रहा था, बड़ी जवाँमर्दी से मेरी बीवी-बच्चों को अपने यहाँ रखा और उन से ये बीस बरस कटवा दिए, मैंने बहुत शुक्रिया अदा कर के उन के वास्ते दोनों लोक में उन की ख़ैर की दुआ की। कोई चार-पाँच रोज़ रहने के बाद फिर मैं करनाल के रास्ते थानेसर आया और एक रात वहाँ रह कर फिर अम्बाला को लौट आया। जिस-जिस शहर में ये ख़ाकसार गया, हज़ारों लोग उस शहर के मेरे देखने को आते थे और थानेसर में तो मेरी ये हालत रही कि सैकड़ों की तादाद में मुझे देखने वाली जनता के मारे मैं उस रात सोने भी नहीं पाया। वक़्त की तंगी की वजह से बहुत से आदमी मेरी मुलाक़ात से महरूम [वंचित] भी रह गए। अम्बाला में भी दो-तीन महीने तक मंज़िलों से लोग मेरे देखने को आते रहे और मेरा मुँह देख-देख कर ख़ुदा की क़ुदरत पर हैरान होते थे।

शहर थानेसर को मैंने देखा कि 13 दिसम्बर सन 63 को उस से मेरा क़दम उठाना था कि उस पर पतन आया। इस बीस बरस में छठे हिस्से से भी कम उस की आबादी रह गई। मकानात गिर कर राह-कूचे बन्द हो गए और बजाए आदमियों के, शहर में बन्दर और चींवटों ने दख़ल कर लिया लेकिन मुझ को लक्षणों से ख़ुदावंद तआला ने मालूम करा दिया कि ये शहर जल्द ही बड़ी धूमधाम के साथ फिर आबाद होगा। और बहुत से शहरों पर आबादी में बढ़त ले जावेगा। इस शहर की वीरानी और आबादी और नफ़ा-नुक़सान भी कुछ मेरी ही ज़ात के साथ सम्बन्धित मालूम होता है। यहाँ आ कर मुझ को मालूम हुआ कि मेरे इस मुल्क से जाने के बाद कोई उम्दा बरसात और सस्ता अनाज इस बीस बरस में कभी नहीं हुए लेकिन तारीफ़ है उस ख़ुदा की कि मेरा इस मुल्क में पहुँचना था कि गोया पोर्ट ब्लेयर की बरसातें हमारी साथ ही चली आईं। इस वक़्त तक तीन फ़सलें जो हमारे यहाँ आने के बाद बोई गईं, इस ज़ोर-शोर से हुई हैं कि इस बीते बीस साल हमारी ग़ैर-हाज़री में कभी नहीं हुई। अल्लाह की मेहरबानी से हमारे पहुँचने के साथ ही अकाल से आकाश होगा। गो यह राज़ अल्लाह की जानकारी में किसी तर्ज़ पर हो, मगर हम को तो एक ख़ास इनाम-ए-इलाही समझ कर शुक्र करना चाहिए। और बीती फ़सल में ऐसी बीमारियों की

बहुतायत हुई कि शहर अम्बाला व देवबंद व करनाल वग़ैरा हमारे चौतरफ़ बड़ी मौतें हुईं मगर हमारी छावनी और ख़ास तौर पर मेरे घर के लोग हाल ही में बाहर से आए हुए होने के बावजूद, आज तक हर आफ़त से सुरक्षित रहे।

अल्लाह की इन सौग़ातों [उपहारों] को, जो इस रिसाले में बतौर नमूना, हज़ार में से एक और गधे के बराबर ऊँचे ढेर में से एक मुट्ठी भर बयान हुए हैं, कोई देख कर यह ख़याल न करे कि ऐसे इनामात का लोगों के सामने बयान करना क्या ज़रूरी था। ऐसा करने से एक तो बेख़बरों, आलसियों को जगाना। और दूसरे, सूरअ ज़ुहा में ख़ुद अल्लाह रब-उल-इज़्ज़त ने फ़रमाया है कि मेरे ईनामों को लोगों में बयान करो और पैग़म्बर के व्यवहार की राह में जिस को ज़रा भी दख़ल होगा, जिस ने सीधा, सचाई का, महात्माओं आदि के प्रवचनों का रास्ता सोच-विचार और ग़ौर से देखा होगा, वो जानता होगा कि जब पथिक या साधक का जीवन-निर्वाह और दृष्टि अध्यात्म से रौशन होते हैं, तो वह हर हरकत और सकून को, ख़ुदा के उपहारों के ज़रिए, असंख्य उद्देश्य और फ़ायदे उस से निकालता है। और क़ौल [कथन] शेख़ सादी का "बर्ग-ए-दरख़्तान-ए-सब्ज़ दर नज़र-ए-होशियार/ दफ़्तरी अस्त क़ुदरत-ए-किर्दगार" 'होशियार की नज़र में एक पेड़ का हरा पत्ता क़ुदरत-ए-किर्दगार [सर्वशक्तिमान ईश्वर] का पूरा ख़ज़ाना होता है' उसी ज़रिया की तरफ़ इशारा है।

नौकरी और वकालत के काम के लिए दरख़्वास्तें और उन का हश्र

जब मैं यहाँ पहुँचा तो पहले बहज़ूर गवर्न्मेंट पंजाब, नौकरी मिलने के वास्ते एक दरख़्वास्त पेश की। उस पर साहब मम्दूह [जिस की प्रशंसा कर रखी है] ने अपने वादे का ख़याल रखते हुए, साहब कमिश्नर अम्बाला से हालत तलब फ़रमाई मगर मकनाब साहब कमिश्नर का वहाबियत के प्रति विद्वेष तो यहाँ मशहूर है। उन्होंने लिखा "कि साइल [दरख़्वास्त करने वाला] गो कितना भी ख़ुशचलन पोर्ट ब्लेयर में रहा हो मगर उस से यह साबित नहीं होता कि वो यहाँ फ़रोग़ [उन्नति] पा कर फिर मुख़ालफ़त [विरोध] सरकार न करेगा। इस वास्ते नौकरी या वकालत, दोनों काम उस को न दिए जावें।" इस सबब से गवर्न्मेंट ने नौकरी तो मुझ को आज तक नहीं दी मगर वकालत के सम्बन्ध में यह लिखा था कि अगर दरख़्वास्त करने वाला फिर इम्तिहान देवे तो वकीलों की श्रेणी में दाख़िल हो सकता है। चुनांचे यह ख़बर तमाम अख़बारात हिन्द में भी छप गई थी। मैंने दोबारा इस लिखित हुक्म गवरमेंट पर भरोसा कर के अनगिनत रुपये क़ानून की किताबों की ख़रीद में और महीनों तक सर बहकाया और जब तैयारी के बाद ख़ुद इस हुक्म गवरमेंट की नक़ल भेज कर चीफ़ कोर्ट से इम्तिहान सन 1884 ईसवी में शरीक होने की इजाज़त चाही तो उस ने फट से मेरी दरख़्वास्त नामंज़ूर कर दी। मैं इस क़द्र ख़र्च और मेहनत के बाद, नामंज़ूरी का

यह हुक्म का पा कर घबराया और फ़ौरन गवरमेंट को उस की सूचना की मगर वहाँ से ये जवाब आया कि गवरमेंट को चीफ़ कोर्ट के हुक्म में दख़लन्दाज़ी करने का इख़्तियार नहीं है। इस गवरमेंट के पहले हुक्म पर मैंने भरोसा कर के नौकरी, घरबार, माल-असबाब बरबाद कर के काला पानी छोड़ कर हज़ारों रुपये का नुक़सान उठाया और आज तक बेघर, बेरोज़गार मारा-मारा फिरता हूँ और इस दूसरे हुक्म पर भरोसा कर के असंख्य रुपये क़ानून की किताबों में ख़र्च कर के, महीनों दिमाग़ खपा कर आख़िर टका सा जवाब पा कर चुप हो रहा।

जब मैं बहुत तंग हुआ तो लाचार, अर्ज़ीनवीसी की इजाज़त चाही तो वो भी मंज़ूर न हुई। और ज़िला अधिकारियों का विद्वेष तो यहाँ तक बढ़ा हुआ है कि जब उन को किसी पढ़ाने वाले की ज़रूरत होती है और साहब मजिस्ट्रेट मुझ को भेज देते हैं तो मेरा नाम सुन कर नाक चढ़ा लेते हैं और फ़रमाते हैं कि वो तो वहाबी है, हम उस से नहीं पढ़ेंगे, बल्कि इन के देखा-देखी पलटनों के अफ़सरों को भी बिलावजह मुझ से नफ़रत हो गई और अब कोई मुझ से नहीं पढ़ता और बाद चले जाने कप्तान टेम्पल साहब के, मुझ को छावनी की सीमाओं के अन्दर नज़रबंद कर रखा है। इस सबब से किसी दूसरी रियासत में जा कर भी कोई रोज़गार तलाश करने की लायक़ न रहा। इस वास्ते लाचार हो कर मैंने लॉर्ड डफ़रिन साहब बहादुर गवर्नर जनरल हिन्द को अर्ज़ किया था कि ये कैसा इन्साफ़ है, न मुझ को क़ैद से छोड़ते हो, न खाने को देते हो, न मुझ को काले पानी में रहने दिया, न मेरा ज़ब्त किया हुआ माल वापिस दिया। अगर मेरी साथ कुछ नेक सलूक करना ख़िलाफ़-ए-इन्साफ़ व अख़्लाक़ है तो साहबो, मुझ को पूरी रिहाई दे कर स्वच्छन्द, बेलगाम कर दो, उस वक़्त मैं अपना गुज़ारा आप कर लूँगा। क़ैद में भी रखना और खाने को भी न देना, ये तो नवाबी क़ानून है। मगर लॉर्ड डफ़रिन साहब ने जवाब तक भी नहीं दिया। अब मेरा अल्लाह मालिक है।

जब से कप्तान टेम्पल साहब विलायत को चले गए हैं, मैं भूखा नहीं मरता। मेरा पचास रुपये माहवार का ख़र्च ख़ुदावंद-ए-तआला अपनी समूची सामर्थ्य से आप पूरा कर देता है। उस ने ख़ुद वादा किया है 'मईयत्त तक़िल्ला यजअल लहू मख़रजा व यरज़ोक़ुहु मिन हैसो ला यहतसिब' – 'जो कोई अल्लाह से डरता है, अल्लाह उस के वास्ते आफ़त से निकलने का रस्ता फ़राहम [एकत्र] कर देता है और ऐसी जगह से रिज़्क [जीविका, रोज़ी] देता है जहाँ से उस का गुमान भी नहीं होता।' इस वादा-ए-इलाही को मैं अपने हाल पर सच्चा, चरितार्थ पाता हूँ कि मुझ को उस आफ़त से निकाल भी लाया और अब बावजूद अंग्रेज़ों की नाकाबंदी के, ऐसी जगह से मुझ को रिज़्क [भोजन, रोज़ी] पहुँचाता है कि इन्सान की अक़्ल उस से हैरान है।

अंग्रेज़ सरकार के बारे में राय

मैंने जब अंग्रेज़ी पढ़ कर तरह-तरह की किताबें देखीं और रात-दिन असंख्य साहब लोगों के साथ रहने और तरह-तरह की बातचीत करने का इत्तफ़ाक़ [संयोग] हुआ तो मुझ को मालूम हुआ कि अंग्रेज़ सरकार का हरगिज़ हरगिज़ इरादा नहीं है कि किसी हिन्दू या मुसलमान को इसाई बनावे। बल्कि बीसों साहब लोगों को मैंने देखा कि वो ख़ुद नसरानियत [ईसाई धर्म] को एक व्यर्थ बात और बच्चों का खेल समझते हैं। सन 1857 ईसवी में जो हिन्दोस्तानी फ़ौज को यह ख़याल था कि अंग्रेज़ सरकार कारतूस वग़ैरा के ज़रिए हम को क्रिस्तान [क्रिस्चन, ईसाई] करना चाहती है, बिल्कुल एक व्यर्थ और नीच व शोशा शैतानी था। बस कि दोनों तरफ़ के हज़ारों ख़ून हो गए और असंख्य रईस और अमीर और मुअज़्ज़िज़ ओहदेदार बिगड़ गए।

जहाँ तक मुझे मालूम है, दुनिया के मौजूदा पातशाहों में अंग्रेज़ी सल्तनत एक लामज़हब [बिना धर्म] और आज़ाद और उम्दा [बढ़िया] राज है। अगर ये लोग मौजूदा बेबुनियाद पक्षपात और विद्वेष को दिल से दूर कर देवें तो मेरे ख़याल में ज़माना-ए-हाल के मुसलमान तुर्कों और मुग़लों और अफ़ग़ानों से भी यह लोग इस मामले में बेहतर हैं। इन पातशाहों की अमलदारी [सत्ता, राज्याधिकार] में कोई आदमी खुला-खुला क़ुरान और हदीस पर अमल नहीं कर सकता और अपनी ख़यालात और अक़ाइद [धर्म विश्वास] को सिवाय मामूली लकीर के, दूसरे तौर पर ज़ाहिर नहीं कर सकता। देखो, ये सिर्फ़ अंग्रेज़ी राज की बदौलत है कि मैंने ये रिसाला सच-सच लिख दिया और अपने रंज और तकलीफ़ को ज़ाहिर कर दिया मगर इस में शक नहीं कि अंग्रेज़ी राज से केवल हमारी सल्तनत और हुकूमत ही नहीं जाती रही जिस के चले जाने का सिवाय ख़ानदान तैमूरी के किसी दूसरे को ऐसा रंज नहीं है, बल्कि हमारी कला-कौशल व तिजारत [व्यापार] व नौकरी व मआश [आजीविका] वग़ैरा सब बरबाद हो गए और हम फ़क़ीर बन गए। और ज़बानदराज़ [लम्बी ज़बान वाले] मक्कार दग़ाबाज़ों ने अपनी ज़बानदराज़ी और चालाकी से अपनी ख़ैरख़्वाही [शुभ इच्छा] के वास्ते, हमारी तरफ़ से सरकार को ऐसा भड़काया और ऐसे खुले तौर पर झूठे इलज़ाम हम पर क़ायम किए कि जिन के खण्डन में मुझ को एक दूसरी किताब लिखनी पड़ी। अब अंग्रेज़ लोग बजाए हमदर्दी और दस्तगीरी [सहायता] के, हमारे दुश्मन हो रहे हैं। गौरनर तक, कोई हमारी फ़रियाद को नहीं सुनता सिवाय दिलों को बदल देने वाले व पीड़ितों की मदद करने वाले ख़ुदा के, जिस की हुज़ूर में हमारी फ़रियाद है कि तू हमारी फ़ातेह [विजयी] क़ौम के दिल में इन्साफ़ और रहम डाल कि वो वहाबियत के प्रति अनुचित विद्वेष को दिल से दूर कर के और ख़ुदग़र्ज़ों की बात को बिना जाँच तस्लीम [स्वीकार] न कर के, इस शिष्ट, सभ्य

सम्प्रदाय की क़द्र करे और उन की शत्रुता से बाज़ आवे और अपनी कुल रिआया गोरी-काली को बिला लिहाज़ मज़हब व लिबास (कोट पतलून) व रंग के, सन 58 ईसवी के वादे के मुताबिक़ एक ही आँख से देखे - तो फिर ये सब मौजूदा तकलीफ़ें सरकार की रफ़ा हो जावेंगी। लाखों आदमियों के दिल को बेवजह दुखाना और उन की दुआ लेना अच्छा नहीं है। आगे सरकार मुख़्तार [आज़ाद] है। 'बर रसूलान बलाग़ बाशद व बस' – [पैग़म्बरों की ज़िम्मेदारी पहुँचाना है, बस – अर्थात संदेशवाहकों की ज़िम्मेदारी ईश्वर का सन्देश पहुँचाने तक ही सीमित है, उसे लागू करवाने की नहीं।]।

अब आख़ीर पारे [भाग, हिस्से] में लॉर्ड रिपन साहब बहादुर व जनरल डोनाल्ड स्टुआर्ट साहब बहादुर और कप्तान टेम्पल साहब बहादुर व डाक्टर बटूसन साहब और अमूमन कुल अफ़सरान जज़ाइर अण्डमान का और ख़ास तौर पर करनैल बी. फ़ोर्ड और जरनैल एच. मैन साहब और मेजर पुल्फ़ेयर साहब और करनैल पराथ्रू साहब और मिस्टर ई.एच. मैन साहब असिस्टेंट कमिश्नर और मिस्टर बरोक्स [ब्रुक्स] साहब और सरदार बघेल साहब एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नरान का दिल से शुक्रिया अदा करता हूँ कि जिन की बदौलत मेरी क़ैद सख़्त बआसानी तय हो गई और फिर अपने प्यारे वतन को आ कर देखा और इसी तरह उन पक्षपाती, विद्वेषी साहब लोगों के हक़ में भी दुआ करता हूँ कि ऐ ख़ुदावंद, विद्वेष की ज्वाला को उन के दिलों से दूर कर ताकि वे विजेता और पराजित के दरमियान इत्तफ़ाक़ और महब्बत कराने की कोशिश करें और नाहक़ उत्तेजना दे कर जलते को न जलावें। आमीन, या रब-उल-आलिमीन अल राक़िम [समूचे आलम के रब, जिस ने लिखा/रक़म किया है]।

ख़ाकसार जान निसार क़ौम मुहम्मद जाफ़र थानेसरी हाल मुक़ीम [वर्तमान में निवासी] सदर बाज़ार, कैम्प अम्बाला।

इश्तहार

यह किताब इस दफ़ा बतौर मसविदा के छपवा कर आना ख़लाइक़ [जन साधारण] की राय पर छोड़ दी गई है, इस वास्ते नाज़रीन [पाठकों] से उम्मीद है कि बाद मुलाहज़ा इस के [इसे देखने, ग़ौर करने के बाद], जहाँ कोई लफ़्ज़ ख़िलाफ़-ए-तहज़ीब या ख़िलाफ़-ए-मुहावरा या ख़िलाफ़ मर्ज़ी हुक्काम वक़्त या ख़िलाफ़ वाक़िआ पावें तो मुअल्लिफ़ [सम्पादक, यानी लेखक] को इतिलाअ बख़्शें [सूचित करें]। इंशा अल्लाह [यदि ईश्वर ने चाहा] बशर्त सेहत तबा दोयम [दूसरा संस्करण] में उस की इस्लाह [सुधार, बेहतरी] कर दी जावेगी।

आख़री इल्तिमास [प्रार्थना]

जिस दिल में दर-ओ-उलफ़त-ए-ज़ात ख़ुदा न हो
जिस आँख से बख़ौफ़ हक़ आँसू बहा न हो
जो हाथ सिर्फ़ असीलह-ए-ख़र्च-ए-दुआ न हो ॥ (असील – शरीफ़, खरा, उत्तम)
जो पाँव राह-ए-हक़ में क़दम भर चला न हो
वो दिल ख़राब ख़स्ता हो, वो आँख फूट जाए
होवे क़लम वो हाथ तो वो पाँव टूट जाए।

आख़री दुआ

अल्लहुम्मा इन्ना नजअलोका फ़ी नुहूरेहिम व नअजोबेका मिन शुरुरेहिम।

[यह दुआ उस समय की जाती है जब दुश्मन का भय हो – ऐ अल्लाह, हमारे ख़िलाफ़ जो साज़िश कर रहे हैं, उन की साज़िश को नाकाम कर और उन की शरारत से हमारी हिफ़ाज़त फ़रमा।]

महात्मा जोतिबा फुले के भाषणों की आधुनिकता

डॉ. अमरनाथ

(देस हरियाणा (अंक 38-39) सावित्रीबाई-जोतिबा फुले के भाषण व पत्र विशेषांक पर वरिष्ठ आलोचक प्रोफ़ेसर अमरनाथ ने टिप्पणी की। प्रोफ़ेसर अमरनाथ ने धर्मशास्त्रों व मिथकों के बरक्स जोतिबा की आधुनिक व वैज्ञानिक दृष्टि को रेखांकित किया है। प्रस्तुत है प्रोफ़ेसर अमरनाथ की टिप्पणी - सं.)

महात्मा जोतिबा फुले के भाषणों पर जब मैं यह प्रतिक्रिया लिख रहा हूँ तो दूसरी ओर नूपुर शर्मा नाम की एक भाजपा प्रवक्ता द्वारा पैगंबर मुहम्मद पर की गई अपमानजनक टिपण्णी को लेकर देश भर में विरोध प्रदर्शन हो रहे हैं और नूपुर शर्मा को फाँसी देने की माँग हो रही है। एक ओर हम अपने बच्चों को जीवों की उत्पत्ति और सृष्टि के विकास के वैज्ञानिक सिद्धांत को चार्ल्स डार्विन के जैव विकास सिद्धांत (Theory of Evolution) का हवाला देते हुए पाठ्य पुस्तकों में पढ़ा रहे हैं और उन्हें समझा रहे हैं कि पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति में किसी अदृश्य सत्ता या ईश्वर की कोई भूमिका नहीं है बल्कि जीवन की उत्पत्ति रासायनिक अभिक्रियाओं तथा भौतिक प्रक्रियाओं के कारण हुई है तो दूसरी ओर अपने उन्हीं बच्चों को कुरान, बाइबिल और पुराणों में वर्णित किसी सर्वशक्तिमान

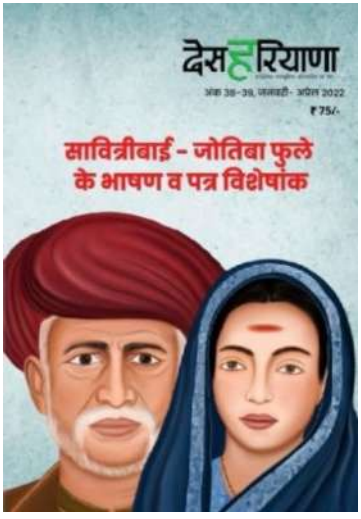

ईश्वर द्वारा सृष्टि की रचना की घुट्टी पिलाकर उन्हें विज्ञानविरोधी, अंधविश्वासी और पाखंडी बना रहे हैं। यही कारण है कि आदिम मनुष्य के मस्तिष्क की उपज, यह तथाकथित सर्वशक्तिमान 'ईश्वर' मानव समाज का सबसे बड़ा शत्रु बना हुआ है। आज भी धर्म और ईश्वर के नाम पर ही सबसे अधिक खून बहाऐ जा रहे हैं। आज से लगभग पौने दो सौ वर्ष पहले जन्म लेने वाले महात्मा जोतिबा फुले (1827-1890) के चिन्तन और दृष्टिकोण को देखकर विश्वास ही नहीं होता कि हमारा समाज वैचारिक स्तर पर उनसे आगे बढ़ा हुआ है। 'देस हरियाणा' के सौजन्य से महात्मा जोतिबा फुले के भाषणों का हिन्दी अनुवाद मैंने पहली बार पढ़ा। ये भाषण 1856 में प्रकाशित हुए थे। उनकी पत्नी सावित्री बाई फुले ने इसका संपादन किया था। उस समय महात्मा फुले की उम्र महज 29 साल थी। जोतिबा फुले के ये भाषण क्रमबद्ध इतिहास के रूप में हैं। इनकी संख्या चार हैं जिनके शीर्षक हैं क्रमश: 'अति प्राचीनकाल', 'इतिहास', 'सभ्यता' और 'गुलामगिरी'। अपने पहले भाषण में उन्होंने जीवों की उत्पत्ति से लेकर सभ्य होते मनुष्य तक की कहानी का प्रामाणिक विवेचन किया है। इसके पीछे उनकी दृष्टि पूरी तरह आधुनिक और वैज्ञानिक है। मानव जाति की उत्पत्ति का विश्लेषण करते हुए वे अनुमान करते हैं कि, "ब्रह्मांड के कई सौर मंडलों के ग्रहों में थलचर, जलचर, नभचर आदि जीव -जंतु हो सकते हैं। अपने भूमंडल पर सभी प्राणियों में मानव प्राणी श्रेष्ठ है।" (पृष्ठ-15) इसी तरह उन्होंने पशु- पक्षियों के उत्पन्न होने तथा जंगली अवस्था से सभ्य मानव बनने की प्रक्रिया का विस्तृत विश्लेषण किया हैं। उन्होंने अपने इस भाषण को मानव जाति की उत्पत्ति, पशु-पक्षी और मानव, जंगली अवस्था से मानव, मनुष्य की प्रगति, बली राजा का बलिस्तान जैसे उपशीर्षकों में बाँटा है। इसी तरह 'इतिहास' शीर्षक भाषण में बहामनियन नाईट्स, झूठा इतिहास लिखने वाले भट्ट-ब्राह्मण, बलिस्तान की सभ्यता, ग्रीक, रोमन और गुलाम, जब बली राज आएगा जैसे उपशीर्षक हैं। उनका तीसरा व्याख्यान 'सभ्यता' शीर्षक से हैं। इसमें उपशीर्षक हैं, प्राचीन काल के अपने पूर्वज, अज्ञानी आर्यन टोली, बलिस्तान ही हमारी जन्मभूमि है, यूनान-रोमन सभ्यता तथा गुलामगिरी के इतिहास की ओर ध्यान दो। उनका अंतिम भाषण 'गुलामगिरी' है। इसके उपशीर्षक हैं, भयभीत जंगली कुत्ते की कहानी, पशु जगत और मानव जगत, अरस्तू और यूनान के गुलाम, रोमन साम्राज्य में गुलामों की स्थिति और अमेरिकन नीग्रो की गुलामगिरी।

विश्वास ही नहीं होता कि आज से लगभग पौने दो सौ साल पहले सामान्य से भी निचले स्तर के माली परिवार का मामूली स्कूली शिक्षा अर्जित करने वाला एक युवक इतना सुपठित, तार्किक और आधुनिक हो सकता है। मानव समाज के विकास को लेकर दिए गए ये व्याख्यान पर्याप्त प्रमाणों से पुष्ट और वैज्ञानिक दृष्टि से संपन्न हैं। उल्लेखनीय है कि

उन दिनों न तो इतने शोध हुए थे और न शोध- सामग्री ही उपलब्ध थी। संचार के साधनों का तो अत्यंत ही अभाव था। फुले खुद अत्यंत निम्न परिवार से ताल्लुक रखते थे।

फुले के इन भाषणों के हिन्दी अनुवादक और 'देस हरियाणा' पत्रिका के संपादक प्रो. सुभाष चंद्र ने अपने संपादकीय में इस ओर संकेत करते हुए लिखा है कि प्रसिद्ध मानवशास्त्री एंगेल्स की पुस्तक 'परिवार, निजी संपत्ति और राज्य' का मानव विकास की विभिन्न संस्थाओं के निर्माण को जानने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। गौर करने की बात यह है कि यह पुस्तक सन् 1884 में प्रकाशित हुई थी। (द्रष्ट्य, देश हरियाणा, जनवरी-अप्रैल 2022, पृष्ठ-8) अपने भाषणों में यूरोप और अमेरिका के विद्वानों, इतिहासकारों, दार्शनिकों का फुले जगह- जगह उल्लेख करते हैं। उन्होंने अपने भाषणों में डार्विन, लिव्ह, प्लूटार्क, टासिटस, केटो, मेरीयास, सीक्षर, सिसरो, मेगस्थनीज, सुकरात, प्लेटो, अरस्तू आदि इतिहासकारों और दार्शनिकों के विचारों का बार- बार हवाला दिया है। वह समय और फुले की उम्र को देखते हुए यह चौंकाने वाली बात है।

फुले अनुमान करते हैं कि यूरोप के लोग जिस तरह ज्ञान- विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति कर रहे हैं वे शीघ्र ही चाँद पर तो पहुँचेंगे ही, "आकाश गंगा में अनेक सूर्य मंडल हैं, उनमें से पृथ्वी जैसे किसी ग्रह पर ही न पहुँच जायँ, कह नहीं सकते।" (उपर्युक्त, पृष्ठ-35)

फुले ने अपने भाषणों में अंग्रेजी राज की बार- बार प्रशंसा की है क्योंकि अंग्रेजी राज हमारे देश के "शूद्र-अतिशूद्र लोगों के पशुतुल्य जीवन और अज्ञानता को दूर करने के लिए बहुत उपयुक्त है। क्योंकि मनु विधान के अनुसार शूद्रों -अतिशूद्रों द्वारा विद्या -ज्ञान हासिल करके उद्योग-धंधा करना, धन संपत्ति अर्जित करना आज तक वर्जित था। इसलिए वे अज्ञानी व दरिद्र होते गए। पशुओं की तरह रहने की आदत बन गई और गुलामगिरी से ही संतुष्ट रहने को पुण्य समझने लगे। अब हमें अंग्रेजी विद्या सीखकर ज्ञान बढ़ाते हुए अपनी व अपने बलिस्तान की शान को भी बढ़ाना चाहिए।" (उद्धृत, देस हरियाणा, जनवरी-अप्रैल 2022, पृष्ठ-34)

फुले भारत के इस क्षेत्र को 'बलिस्तान' कहते हैं। पौराणिक मान्यता है कि पहले इस क्षेत्र में महाप्रतापी असुर राजा बली का शासन था। ऋग्वेद में वामन-बली का प्रकरण है। असुर पूर्व-वैदिक लोग थे। बली बड़े पराक्रमी राजा थे। वेदों से लेकर रामायाण, महाभारत तथा पुराणों में भी बली की कथा का वर्णन है। बली प्रजावत्सल राजा थे। उनके राज में सभी समानता और भाई-चारे के साथ रहते थे। जोतिबा फुले भी मानते हैं कि यहाँ पहले बली का शासन था। ईरान से आने वाले आर्यों ने इस पूरे क्षेत्र पर अधिकार कर लिया और यहाँ के मूल निवासियों को गुलाम बना लिया। शूद्रों को जोतिबा यहाँ के मूल निवासी के रूप में रेखांकित करते हैं और आर्यों को ईरान से आए आक्रांता। वे बताते हैं कि अपने को आर्य

कहने वाले ये ब्राह्मण भारत के मूल निवासियों में फूट डालकर तथा अपनी ताकत के बलपर उन्हें अपना गुलाम बना लिया और उनके उन्नत और सभ्य देश को बर्बाद कर दिया।

फुले के अनुसार बली के राज की समृद्धि एवं समानता को वापस लाने के लिए हमें ब्राह्मणवादी गुलामी से मुक्त होना होगा। इसी गुलामी ने हमें कमजोर बना दिया है, अमानवीय स्थिति में पहुँचा दिया है। हमें आर्यों के आज के ढाँचे को तोड़ने के लिए लंबा संघर्ष करना पड़ेगा।

फुले के अनुसार, "अरब लोग दास को गुलाम कहते हैं। भट्ट लोग इन्हें शूद्र बोलते हैं। यूनान के लोग स्लेव व अन्य यूरोपियन लोग अपेक्षाकृत महत्वहीन दासों को सर्वेन्ट कहते हैं। गुलामों की स्थिति को ही गुलामगिरी कहते हैं। गुलामगिरी, शूद्रगिरी, स्लेव्हगिरी, सेव्हिड्युल और दासत्व आदि शब्दों का अर्थ एक ही है। जानवरों में गुलामगिरी की प्रथा नहीं होती। यह सिर्फ और सिर्फ ज्ञान रूप धारण करने वाले मनुष्य में ही होती है, जो मनुष्य की जन्मजात स्वतंत्रता को छीन लेती है।" (उपर्युक्त, पृष्ठ- 40)

इस बात की आलोचना की जा सकती है कि अपने भाषणों में फुले ने भारत में अंग्रेजी राज का समर्थन किया है। लेकिन भारत में उन दिनों शूद्रों की दशा को देखते हुए फुले के ये विचार बिल्कुल स्वाभाविक हैं। उनकी दृष्टि में अंग्रेजो का आना यूरोप की विकसित सभ्यता का आना है जहाँ इस तरह की वर्ण- व्यवस्था और जाति गत अमानवीय स्तरभेद नहीं है। अंग्रेजों के आने से यहाँ के शूद्रों में नई चेतना का संचार हो सकता है। उनके भीतर अपनी गुलामी से मुक्त होने की छटपटाहट पैदा हो सकती है। फुले कहते है, "फिलहाल अपने बलिस्तान पर अंग्रेज बहादुरों का राज है, वे रैयत को सभ्य बनाकर सुख -सुविधा बढ़ा रहे हैं,... उनकी (ईरानी आर्य ब्राह्मणों की) थोपी हुई गुलामगिरी को खत्म करने के लिए अंग्रेज लोगों का राज उपयुक्त है।" (उपर्युक्त, पृष्ठ 36)

इन भाषणों में उन्होंने ब्राह्मणों द्वारा तैयार किए गए अबतक के भेदभावमूलक, शोषणकारी इतिहास का खंडन किया है और उसके समानान्तर स्वतंत्रता, समता, भाई-चारे पर आधारित मानवीय समाज की रचना करने का संकल्प लिया हैं। उन्होंने भारतीय इतिहास की जाति-वर्ण के आधार पर बनी भयंकर असमानता और उसके कारणों का व्यापक और तार्किक विश्लेषण किया है।

फुले ने 1873 में 'सत्य-शोधक समाज' की स्थापना की थी। इसके माध्यम से उन्होंने समाज को बदलने की दिशा में व्यापक कदम उठाए और आन्दोलन किए। अछूतों एवं स्त्रियों के लिए स्कूल, पीने के पानी के कुओं को अछूतों के लिए भी खोलने के लिए संघर्ष, विवाह में ब्राह्मण पुजारियों की अनिवार्यता का विरोध, विधवाओं के सिर के बाल काटने के विरुद्ध नाईयों की हड़ताल, शोषित स्त्रियों के लिए प्रसूति गृह खोलने जैसे अनेक जरूरी

कार्य किए। इन सब कारणों से सत्य- शोधक समाज महाराष्ट्र का एक संघर्षशील व्यापक आन्दोलन बन गया।

महात्मा जोतिबा फुले के इन भाषणों को पढ़ने से पता चलता है कि बचपन से ही वे अप्रतिम प्रतिभाशाली, निर्भीक, तार्किक, संघर्षशील और वैज्ञानिक दृष्टि से संपन्न थे। दुनिया में होने वाले नये से नए शोधों से वे अपने को जोड़े रहते थे। वे जिस तरह के परिवार से ताल्लुक रखते थे उसे देखकर यह सब अविश्वसनीय सा लगता है, किन्तु सच यही है।

(लेखक कलकत्ता विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर और हिन्दी विभागाध्यक्ष हैं।
संपर्क- मोबाइल: 9433009898)

देस हरियाणा प्राप्त करने के लिए संपर्क करें

कुरुक्षेत्र	-	विकास साल्याण	9991878352
	-	योगेश शर्मा	9896957994
यमुनानगर	-	बी मदन मोहन	9416226930
अंबाला शहर	-	जयपाल	9466610508
करनाल	-	अरुण कैहरबा	9466220145
इंद्री	-	दयालचंद जास्ट	9466220146
घरौंडा	-	राधेश्याम भारतीय	9315382236
	-	नरेश सैनी	9896207547
कैथल	-	कुलदीप	9729682692
जीन्द	-	मंगतराम शास्त्री	9516513872
टोहाना	-	बलवान सिंह	9466480812
नरवाना	-	सुरेश कुमार	9416232339
सोनीपत	-	विरेंद्र वीरु	9467668743
पानीपत	-	दीपचंद निर्मोही	9813632105
पंचकुला	-	सुरेंद्र पाल सिंह	9872890401
	-	जगदीश चन्द्र	9316120057
रोहतक	-	अविनाश सैनी	9416233992
	-	अमन वासिष्ठ	9729482329
भिवानी	-	का. ओमप्रकाश	9992702563
दादरी	-	नवरत्न पांडेय	9896224471
सिरसा	-	परमानंद शास्त्री	9416921622
	-	राजेश कासनिया	9468183394
हिसार	-	राजकुमार जांगड़ा	9416509374
महेन्द्रगढ़	-	अमित मनोज	9416907290
मेवात	-	नफीस अहमद	7082290222
शिमला	-	एस आर हरनोट	01772625092
राजस्थान (परलीका)	-	विनोद स्वामी	8949012494
चंडीगढ़	-	ब्रजपाल	9996460447
	-	पंजाब बुक सेंटर, सैक्टर 22	
दिल्ली	-	संजना तिवारी , नजदीक श्रीराम सेंटर,	
	-	आरके मैगजीन , मौरिस नगर, थाने के सामने	
	-	एनएसडी बुक शॉप	
ई-प्राप्ति	-	www.notnul.com/desharyana	

जो पाँव राह-ए-हक़ में क़दम भर चला न हो
वो दिल ख़राब ख़स्ता हो, वो आँख फूट जाए
होवे क़लम वो हाथ तो वो पाँव टूट जाए।

SATYASHODHAK FOUNDATION